चौथी दुनिया

हिंदी का पहला साप्ताहिक अखबार

www.chauthiduniya.com

रंगनाथ आयोग मामले पर सरकार को घेरने की तैयारी

पेज 5

दलाई लामा को चीन में लोकतंत्र आने की उम्मीद

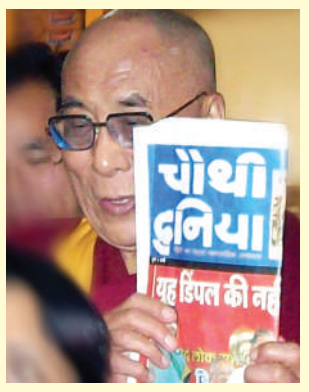

पेज 5

यौनकर्मियों के बच्चों ने ख़ुद ही लिख डाली ज़ुल्म-ओ-सितम की दास्तां

पेज 7

आयुर्वेदिक दवाओं पर चौथी दुनिया की तहक़ीक़ात

पेज 12

मूल्य 5 रुपये

दिल्ली, 14 दिसंबर–20 दिसंबर 2009

लिब्रहान कमीशन की रिपोर्ट के बाद भी

आरएसएस पर बैन क्यों नहीं?

लिब्रहान कमीशन की रिपोर्ट ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, विश्व हिंदू परिषद, बजरंग दल और शिव सेना को बाबरी कांड के लिए दोषी ठहराया है. अटल बिहारी वाजपेयी, लालकृष्ण आडवाणी, मुरली मनोहर जोशी, उमा भारती एवं गोविंदाचार्य समेत कई भाजपा नेताओं को भी इसके लिए ज़िम्मेदार बताया गया है. रिपोर्ट के निष्कर्ष इस बात के लिए पर्याप्त हैं कि सरकार, संघ और भाजपा पर अविलंब प्रतिबंध लगा सके. बाबरी कांड के गुनहगार हमारे सामने हैं, उनके बयान हैं, वीडियो हैं, भाषण के टेप हैं, उनको सज़ा दिलाने के लिए लिब्रहान कमीशन की रिपोर्ट भी है, लेकिन सरकार ने उन्हें क्लीन चिट दे दी है. उन्हें दंडित करने के बजाय सरकार दार्शनिक मुद्रा में आ गई है. भविष्य में ऐसी घटना दोबारा न हो, इसके लिए वह क़ानून बनाने की सोच रही है.

मनीष कुमार

सरकार और कांग्रेस पार्टी ने लिब्रहान कमीशन की रिपोर्ट को समझने में चूक की है, इसलिए वह सही कार्रवाई नहीं कर सकी. उसने लिब्रहान कमीशन की रिपोर्ट के शब्दों और वाक्यों को पढ़ा, लेकिन वह रिपोर्ट को उसके सही संदर्भ में समझने से चूक गई. सरकार ने कारण को प्रभाव समझ लिया और प्रभाव को बड़ी निर्लज्जता के साथ पूरे विषय से बाहर रखने में वह कामयाब रही. बाबरी मस्जिद का गिरना राम जन्मभूमि आंदोलन का प्रभाव नहीं है. बाबरी मस्जिद विध्वंस दरअसल कारण है, जिसका प्रभाव है, देश भर में हुए दंगे. जिसका प्रभाव है, हज़ारों मासूम लोगों की हत्याएं और करोड़ों-अरबों का भारी नुक़सान. अब जिन लोगों ने इस कारण को जन्म दिया, दरअसल वे लोग ही दंगे के असली ज़िम्मेदार हैं. मस्जिद को गिराने और राम मंदिर बनाने की साज़िश तथा हठ की वजह से कई बेबस औरतों की गोदें सूनी हुईं, कई औरतें विधवा बनीं, बहनों ने भाई खोए और न जाने कितने बच्चों के सिर से मां-बाप का साया उठ गया. इनमें हिंदू भी थे और मुसलमान भी. इसलिए लिब्रहान कमीशन की रिपोर्ट को बाबरी मस्जिद के विध्वंस के चश्मे से देखना सरासर बेईमानी है.

जिन लोगों ने बाबरी मस्जिद विध्वंस के लिए देश भर से कारसेवकों को इकट्ठा किया, जिन्होंने 6 दिसंबर 1992 से पहले शिलान्यास के नाम पर देश के हर शहर-हर कस्बे में आतंक और दंगे का माहौल बनाया, जिनकी वजह से कई शहरों में दंगे हुए, हज़ारों लोगों की जानें गईं और करोड़ों का नुक़सान हुआ.

बाबरी मस्जिद गिरने के बाद देश के कई शहरों में फिर से दंगे भड़के. इस दंगे में भी हज़ारों लोगों की जानें गईं और करोड़ों रुपये की संपत्ति का नुक़सान हुआ. भारत की साझी संस्कृति और सामाजिक भाईचारे पर कुठाराघात हुआ. इस दौरान देश में जितने भी दंगे हुए, अगर उनके बारे में एक-एक वाक्य भी लिखा जाए तो इस अख़बार के सारे पन्ने कम पड़ जाएंगे. ये जानकारियां आम हैं. सब जानते हैं. सरकार भी जानती है. जो लोग, जो संगठन, जो नेता बाबरी मस्जिद के विध्वंस के ज़िम्मेदार हैं, वे देश में फैले आतंक के माहौल, हत्या, दंगे और दंगों के दौरान निर्मम कुकृत्यों के लिए ज़िम्मेदार हैं. अगर ये संगठन नहीं होते, अगर ये नेता नहीं होते तो राम जन्मभूमि आंदोलन नहीं होता और देश में दंगे भी नहीं होते. अब जब लिब्रहान कमीशन की रिपोर्ट ने बाबरी मस्जिद विध्वंस के लिए ज़िम्मेदार संगठनों और नेताओं के नाम बड़ी सफ़ाई से सामने रख दिए हैं, तो क्या सरकार की यह ज़िम्मेदारी नहीं है कि साज़िश करने वाले संगठनों और नेताओं के ख़िलाफ़ वह कार्रवाई करे? लिब्रहान कमीशन की रिपोर्ट ने संघ और भाजपा को गुनहगार बताया है तो सरकार संघ पर प्रतिबंध क्यों नहीं लगाती?

इतिहास में तो यही लिखा जाएगा कि कांग्रेस की एक सरकार ने बाबरी मस्जिद को गिरने दिया और दूसरी ने बाबरी मस्जिद के गुनहगारों को छोड़ दिया.

सरकार ने राजधर्म का पालन नहीं किया. सरकार न्याय करने में चूक गई. लिब्रहान कमीशन की रिपोर्ट अब सबके सामने है. सरकार की कार्रवाई सामने है. लगता है, सरकार ने बाबरी मस्जिद के गुनहगारों को माफ़ी दे दी. ऐसा महसूस होता है, सरकार ने राम जन्मभूमि आंदोलन के दौरान और बाबरी मस्जिद के विध्वंस के बाद हुए दंगों को भी भुला दिया. ऐसा लगता है कि सरकार छोटी मछलियों को तो सज़ा दिला सकती है, लेकिन उसमें मगरमच्छों के ख़िलाफ़ क़ानूनी कार्रवाई करने की हिम्मत नहीं है. क़ानून छोटे-मोटे पैदल सैनिक को तो सज़ा दे देगा, लेकिन इस पूरे खेल के मास्टर माइंड को कौन सज़ा दे. जिन लोगों ने दंगे के दर्द को झेला, परिवार के सदस्यों को खोया और जिनके घर जलाए गए, उन्हें न्याय कौन दिलाएगा? ये लोग सरकार की कायरता की वजह से ख़ुद को असहाय महसूस कर रहे हैं. उनका पूरी व्यवस्था से विश्वास उठ रहा है. इन लोगों के पास लिब्रहान कमीशन की रिपोर्ट पर टेलीविजन पर होने वाली बहस को सुनने के अलावा कोई दूसरा चारा नहीं है.

लगभग एक साल के बाद लिब्रहान कमीशन की रिपोर्ट संसद में पेश की गई. इस कमीशन की अवधि चार बार बढ़ाई गई. लिब्रहान कमीशन ने इस दौरान 39 बैठकें कीं और सौ के क़रीब गवाहों के बयानों को दर्ज़ किया. ऐसा लगने लगा था कि शायद यह कमीशन अपनी रिपोर्ट कभी जमा ही नहीं कर पाएगा. देश में सांप्रदायिकता फैलाने वाले संगठन, राजनीतिक दल और नेता छूट जाएंगे. उन्हें शायद सज़ा न मिले. लिब्रहान कमीशन की रिपोर्ट पेश होने के बाद पूरे देश की नज़र इस बात पर थी कि सरकार अब अगला क़दम क्या उठाएगी. आजादी के बाद जितने भी कमीशन बैठे, उनमें से लिब्रहान कमीशन की रिपोर्ट ऐसी है, जिसमें गुनहगारों की न सिर्फ़ पहचान की गई है, बल्कि उनके ज़िम्मेदार होने के सबूत भी दिए गए. रिपोर्ट साफ़-साफ़ कह रही है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, विश्व हिंदू परिषद, बजरंग दल और शिवसेना ने एक सुगठित योजना के तहत छह दिसंबर को बाबरी मस्जिद को तोड़ा. रिपोर्ट में बाबरी कांड के लिए ज़िम्मेदार उन सारे नेताओं के नाम भी हैं, जिन्होंने देश के वातावरण को दूषित किया, देश में उन्माद फैलाया, कारसेवकों को अयोध्या में इकट्ठा किया और उन्हें मस्जिद तोड़ने के लिए प्रेरित किया. अजीबोग़रीब स्थिति यह है कि रिपोर्ट में दर्ज़ गुनहगार टीवी पर बयान दे रहे हैं, अपने जुर्म को क़बूल रहे हैं. जहां तक बात कमीशन की रिपोर्ट

(शेष पृष्ठ 2 पर)

फोटो- प्रभात पाण्डेय

संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष डी पी अग्रवाल का मानना है कि भावी प्रशासनिक सेवा अधिकारियों के चयन में रुझान से ज़्यादा उसकी अभिवृत्ति मायने रखनी चाहिए.

दिल्ली का बाबू

दिलीप चेरियन

कठिन होगी आईएएस की राह

संघ लोक सेवा आयोग जल्द ही प्रशासनिक सेवा परीक्षा और राज्य नागरिक सेवा के बाबुओं की अखिल भारतीय सेवाओं में पदोन्नति की प्रक्रिया में व्यापक बदलाव करने जा रहा है. अगर यूपीएससी की अनुशंसा स्वीकार कर ली जाती है तो बहुत जल्द ही इस सेवा में आने को इच्छुक प्रतिभागियों को प्रारंभिक परीक्षा के साथ वस्तुनिष्ठ प्रकार की दो भिन्न परीक्षाओं में भी बैठना पड़ेगा. सिविल सेवा के लिए उन्हें निर्णय लेने के कौशल के अलावा अभिवृत्ति कौशल भी साबित करना होगा. संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष डी पी अग्रवाल का मानना है कि भावी प्रशासनिक सेवा अधिकारियों के चयन में रुझान से ज़्यादा उसकी अभिवृत्ति मायने रखनी चाहिए. अग्रवाल का यह भी मानना है कि सिविल सेवा में प्रवेश की निर्धारित आयु सीमा भी कम होनी चाहिए. वह प्रतिभागियों की प्रयास संख्या भी कम करने के पक्षधर हैं. संघ लोक सेवा आयोग ग्रामीण इलाक़ों के वैसे प्रतिभागियों को भी प्रोत्साहित करना चाहता है, जिन्होंने स्नातक की शिक्षा इस सेवा के लिए प्रयास कर रहे शहरी प्रतिभागियों की तुलना में देर से पूरी की है. इससे भी ज़्यादा महत्वपूर्ण बात यह है कि द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने प्रयास की संख्या में कमी करने की जो अनुशंसा की है, वह महज़ भीड़ कम करने के लिए है. एक अन्य महत्वपूर्ण प्रस्ताव राज्य सेवा के अधिकारियों की अखिल भारतीय सेवा में पदोन्नति के संबंध में है. संघ लोक सेवा आयोग का मानना है कि चयन का आधार प्रतियोगी परीक्षा और साक्षात्कार होना चाहिए, न कि बाबुओं की वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट के आधार मात्र पर उन्हें पदोन्नत कर देना चाहिए. इस प्रणाली के लागू होने के बाद सिर्फ़ असली बाबू ही भारतीय प्रशासनिक सेवा की दहलीज को पार कर सकेंगे. इसमें कोई संदेह नहीं कि आने वाले दिनों में हम इस प्रस्ताव के बारे में और भी बहुत कुछ सुनेंगे.

बदलाव की बयार

पश्चिम बंगाल में परिवर्तन की हवा चल रही है. इसने दूसरी चीजों को चाहे जितना प्रभावित किया हो, बाबुओं को तो इसने ख़ूब प्रभावित किया है. बाबुओं पर वाममोर्चा सरकार का नियंत्रण किस क़दर ढीला पड़ता जा रहा है, इसका अंदाज़ा कोलकाता में हाल ही में वाममोर्चा की रैली में बाबुओं की अनुपस्थिति से सहज लगाया जा सकता है. हो सकता है कि बाबुओं को राजनीतिक बदलाव के भावी संकेत का अंदाज़ा हो. बहुत संभव है कि बाबुओं ने बाहर निकल कर वाममोर्चा सरकार द्वारा विश्वास बहाली की कसरत में शामिल होने के बजाय अपनी कुर्सी–टेबल पर जमे रहना ही मुनासिब समझा हो. ज़्यादा दिन नहीं हुए हैं, हाल ही में तृणमूल कांग्रेस पार्टी की प्रमुख ममता बनर्जी ने दिल्ली में पश्चिम बंगाल कैडर के अधिकारियों के डिनर की मेजबानी की थी. ज़्यादातर अधिकारी कोलकाता स्थित अपने आकाओं से नाराज़गी मोल लेकर भी इसमें शामिल हुए. मैं तो यही कहूंगा कि ऐसा पिछले कई दशकों में नहीं हुआ. और निस्संदेह, यह बदलाव कोलकाता में ज़्यादा बेहतर महसूस किया जा सकता है. या तो सीपीएम से संबद्ध राज्य सरकार कर्मचारी समन्वय समिति जिसे रैली और राज्य सरकार के कार्यक्रम में बाबुओं की भागीदारी सुनिश्चित करनी थी, ऐसा कर न सकी या फिर बस इतनी सी बात है कि सरकार द्वारा महंगाई भत्ते की बकाया राशि की घोषणा में देरी से वे नाराज़ हैं. लेकिन यह स्पष्ट है कि जिन बाबुओं में पार्टी के आदेश को धता बताने की हिम्मत नहीं थी, कॉमरेडों की आतंकी छाया अब उन पर असर नहीं डालती. यह बदलाव का संकेत है.

आरएसएस पर बैन क्यों नहीं?

फोटो–*प्रभात पाण्डेय*

पृष्ठ एक का शेष

की है, सरकार की कार्रवाई की है तो रिपोर्ट पेश होने के बाद की स्थिति वैसी की वैसी ही है, जैसी रिपोर्ट पेश होने के पहले थी. न जाने सरकार की ऐसी कौन सी विवशता है कि वह उनके ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई करने से हिचक गई.

सरकार को रिपोर्ट में शामिल बाबरी कांड के ज़िम्मेदार संगठनों को बैन करना चाहिए था. चुनाव आयोग में भाजपा की मान्यता रद्द करने की कार्यवाही शुरू करनी थी. ऐसा करना इसलिए ज़रूरी था, क्योंकि ऐसा करने से ही सरकार की साख बचती. किसी आयोग की रिपोर्ट के महत्व को समझा जा सकता था. रिपोर्ट पर सरकार ने जिस तरह का रुख़ अख्तियार किया, उससे बेहतर तो यही होता कि रिपोर्ट को पेश ही नहीं किया जाता.

लिब्रहान कमीशन की रिपोर्ट के मुताबिक़, अयोध्या में कारसेवकों को इकट्ठा करने से लेकर बाबरी मस्जिद के विध्वंस तक की पूरी योजना और व्यवस्था राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की थी. अब सवाल यह है कि दोषी को क्या सज़ा मिले. जब संगठन के स्तर पर देश भर में उन्माद फैलाया जाता है तो रिपोर्ट आने के बाद सरकार का सबसे पहला काम यह हो जाता है कि उस संगठन को बैन करे, जो देश में सांप्रदायिकता फैलाता है. आरएसएस के साथ–साथ उससे जुड़े उन सारे संगठनों को भी प्रतिबंधित करना ज़रूरी है, जिनकी कमान संघ के हाथों में है.

पिछले कुछ महीनों से जिस तरह की ख़बरें आ रही हैं, संघ प्रमुख जिस तरह से बयान दे रहे हैं, उससे तो यही लगता है कि भारतीय जनता पार्टी का अपना कोई वजूद ही नहीं है. यह पार्टी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के हाथों की कठपुतली है. भारतीय जनता पार्टी के अध्यक्ष के चुनाव में जिस तरह संघ की भूमिका दिख रही है, उससे तो यही लगता है कि भाजपा अपने नेताओं, कार्यकर्ताओं और समर्थकों की राय पर नहीं चलती, बल्कि वह संघ के हुक्म की गुलाम है. भारतीय जनता पार्टी का बड़ा से बड़ा नेता, चाहे वह पार्टी अध्यक्ष ही क्यों न हो, संघ को नजरअंदाज़ नहीं कर सकता है. आडवाणी जी जैसे वरिष्ठ नेता को जिन्ना पर अपने बयान के लिए संघ के दबाव पर पार्टी के अध्यक्ष पद से इस्तीफ़ा देना पड़ा था. जब आडवाणी जी संघ के सामने घुटने टेक सकते हैं तो दूसरों की क्या बिसात? ऐसा कई बार सिद्ध हो चुका है कि भारतीय जनता पार्टी संघ के इशारों पर नाचने वाली कठपुतली है. यही वजह है कि संघ के साथ–साथ सरकार को भाजपा के नेताओं और संगठन के ख़िलाफ़ कार्रवाई करनी चाहिए. सरकार का यह दायित्व है कि वैसे संगठनों और नेताओं को चुनावी राजनीति से दूर रखा जाए, जो धार्मिक उन्माद फैला कर राजनीति करते हैं.

लिब्रहान आयोग की रिपोर्ट में अटल बिहारी बाजपेयी जी का नाम शामिल होने से भारतीय जनता पार्टी आहत है. आडवाणी जी संसद में कहते हैं कि उन्हें आश्चर्य है कि जस्टिस लिब्रहान ने वाजपेयी को गुनहगार बताया है. रिपोर्ट में वाजपेयी को मुखौटा कहा गया है, छद्म उदारवादी बताया गया है. भारतीय जनता पार्टी का आरोप है कि लिब्रहान कमीशन ने उन्हें न तो कभी बुलाया और न ही 6 दिसंबर 1992 को वाजपेयी अयोध्या में थे. फिर उनका नाम कमीशन की रिपोर्ट में कैसे आया. जिन लोगों ने 5 दिसंबर 1992 का अटल बिहारी वाजपेयी का भाषण सुना है, उन्हें पता है कि लिब्रहान कमीशन ने जो बात वाजपेयी के बारे में कही, वह सही है. वैसे इससे पहले भी अटल जी को गोविंदाचार्य ने मुखौटा कहा था. जहां तक क़ानून का सवाल है तो उकसावे और साज़िश के मामले में गुनहगारों के घटनास्थल पर उपस्थित होने या न होने का कोई महत्व नहीं है.

नरसिम्हा राव सरकार के कसूर की अनदेखी क्यों?

लिब्रहान कमीशन की रिपोर्ट की सबसे बड़ी कमी यह रही है कि इसमें नरसिम्हा राव की सरकार को क्लीन चिट दे दी गई. यही वजह है कि रिपोर्ट की विश्वसनीयता पर सवाल उठ रहा है. केंद्र सरकार यह कहकर नहीं बच सकती है कि भाजपा के नेताओं ने उसे धोख़े में रखा. हमारे देश में केंद्र सरकार इतनी भी कमज़ोर नहीं है कि किसी इलाक़े में इतना बड़ा कांड हो रहा हो और सरकार को इसकी ख़बर न हो या फिर उसे रोकने के लिए उसमें पर्याप्त शक्ति न हो. भारत में केंद्र सरकार के पास वे सारी शक्तियां हैं, जिससे उसे आराम से रोका जा सकता था. यह बात और है कि तब कांग्रेस सरकार ने उन शक्तियों का इस्तेमाल नहीं किया या फिर यूं कहें कि बाबरी मस्जिद को गिरने दिया.

5 दिसंबर 1992 यानी बाबरी मस्जिद विध्वंस के ठीक एक दिन पहले सुप्रीम कोर्ट में केंद्र सरकार के अटॉर्नी जनरल मिलान बनर्जी ने कारसेवा को रोकने के लिए एक अर्ज़ी दी. इसके लिए मिलान बनर्जी की दलील यह थी कि केंद्र सरकार के पास पुख्ता जानकारी है कि कल बाबरी मस्जिद गिराई जाने वाली है. मिलान बनर्जी ने कोर्ट को बताया कि यह ख़ुफ़िया रिपोर्ट आई बी ने दी है. इस ख़ुफिया रिपोर्ट में यह भी है कि मस्जिद गिरा दिए जाने के बाद शाम पांच बजे तक वहां क्या होने वाला है. कौन नेता क्या कहने वाला है और यह भी योजना बना ली गई है कि मस्जिद गिरा दिए जाने के बाद कल्याण सिंह इस्तीफ़ा दे देंगे. इसका मतलब यह है कि सरकार को पूरी घटना की जानकारी एक दो दिन पहले से थी. फिर उत्तर प्रदेश में राष्ट्रपति शासन क्यों नहीं लगाया गया. केंद्र सरकार को अनुच्छेद 356 लगाने से किसने रोका.

कांग्रेस पार्टी कह रही है कि उत्तर प्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल ने राष्ट्रपति शासन के लिए सिफ़ारिश नहीं की. इसलिए राष्ट्रपति शासन लगाने का सवाल ही नहीं उठता था. इतिहास गवाह है कि अनुच्छेद 356 का वाजिब और ग़ैरवाजिब इस्तेमाल करने में कांग्रेस पार्टी को महारत हासिल है. फिर यह कैसे कोई समझे कि केंद्र सरकार में ऐसा कोई शख्स नहीं था, जिसने इस अनुच्छेद को ठीक से एक बार भी न पढ़ा हो. भारतीय संविधान का अनुच्छेद 356 क्या कहता है, आइए जरा एक नजर इस पर डालते हैं. अनुच्छेद 356 के मुताबिक, *राज्यों में सांविधानिक तंत्र के विफल हो जाने की दशा में उपबंध (1) राष्ट्रपति का किसी राज्य के राज्यपाल से प्रतिवेदन मिलने पर या अन्यथा, यह समाधान हो जाता है कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसमें उस राज्य का शासन इस संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है तो राष्ट्रपति उद्घोषणा द्वारा....राज्य के किसी निकाय या प्राधिकारी में निहित या उसके द्वारा प्रयोक्तव्य सभी या कोई शक्तियां अपने हाथ में ले सकेगा.*

कहने की जरूरत नहीं कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 356 में साफ़–साफ़ लिखा है कि राज्यपाल की रिपोर्ट पर या अन्यथा भी राष्ट्रपति शासन लागू किया जा सकता है. इस अनुच्छेद में यह भी प्रावधान है कि केंद्र सरकार पूरे राज्य या कुछ हिस्से की क़ानून व्यवस्था अपने हाथों में ले सकती है.

बाबरी मस्जिद गिराए जाने से पहले ही केंद्र सरकार के पास यह जानकारी थी कि 6 दिसंबर 1992 को अयोध्या में क्या होने वाला है. इसके बावजूद केंद्र सरकार ने कोई क़दम नहीं उठाया. नरसिम्हा राव की सरकार ने जानबूझ कर कोई कार्रवाई नहीं की, यह उनकी सरकार के एक कैबिनेट मंत्री का कहना है. किसी और ने यह बात कही होती तो शक़ की गुंजाइश भी थी, लेकिन जब नरसिम्हा राव सरकार के एक कैबिनेट मंत्री यह कहते हैं कि केंद्र की सरकार मस्ज़िद को गिरने से बचा सकती थी, लेकिन प्रधानमंत्री ने कोई कार्रवाई नहीं की. एम एल फोतेदार कैबिनेट मंत्री थे. उन्होंने एनडीटीवी के कार्यक्रम *हम लोग* पर यह कहकर सनसनी फैला दी कि उत्तर प्रदेश के राज्यपाल को नरसिम्हा राव ने ये आदेश दिए थे कि जब तक वह न कहें, उत्तर प्रदेश में राष्ट्रपति शासन की सिफ़ारिश न की जाए. फोतेदार ने कहा कि तीन दिन पहले से ही केंद्र सरकार के पास पूरी जानकारी थी कि 6 दिसंबर को कारसेवक मस्जिद तोड़ देंगे. यह ख़बर मिलते ही वह प्रधानमंत्री से मिले और उन्होंने इस ख़ुफ़िया जानकारी से अवगत कराया. इस पर प्रधानमंत्री ने कहा कि मैंने पूरी तैयारी कर ली है, आप चिंता न करें.

6 दिसंबर को जब फोतेदार साहब को यह सूचना मिली कि बाबरी मस्जिद का एक गुंबद तोड़ दिया गया है तो उन्होंने प्रधानमंत्री से मिलने की कोशिश की, लेकिन प्रधानमंत्री कार्यालय से कोई जवाब नहीं मिला. वह राष्ट्रपति के पास गए. उनके मुताबिक़, राष्ट्रपति बच्चों की तरह रोने लगे. उन्होंने कहा कि प्रधानमंत्री का साफ़ आदेश है कि जब तक वह न कहें, राष्ट्रपति शासन नहीं लगाया जा सकता. तब तक यह ख़बर आई कि मस्जिद का दूसरा गुंबद भी तोड़ दिया गया है. तब उन्होंने प्रधानमंत्री से यह गुज़ारिश की कि अभी भी वक़्त है, मस्जिद को बचाया जा सकता है. एक भी गुंबद बच गया तो उस स्थान पर फिर से मस्जिद बनाई जा सकती है. जब बाबरी मस्जिद पूरी तरह गिर गई तो आनन–फानन में कैबिनेट की मीटिंग बुलाई गई. सारे मंत्री वहां मौजूद थे. फोतेदार ने पूछा कि अब यह मीटिंग किसलिए बुलाई गई है तो जवाब मिला कि उत्तर प्रदेश की सरकार को बर्ख़ास्त करना है. फोतेदार साहब ने कहा कि अब से दो घंटे पहले ही उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री कल्याण सिंह ने इस्तीफ़ा दे दिया है. अब किसे बर्ख़ास्त करना है. हैरानी की बात यह है कि एम एल फोतेदार कांग्रेस के वरिष्ठ नेता हैं. बाबरी मस्जिद के विध्वंस के वक़्त वह एक ज़िम्मेदार कैबिनेट मंत्री थे. उन्होंने जो बातें कहीं, उन्हें वह बहुत पहले से कहते आ रहे हैं. इसके बावजूद जस्टिस लिब्रहान ने उनके बयानों को न तो दर्ज़ किया और न ही उनसे पूछताछ की.

दंगा चाहे भागलपुर का हो या फिर मुंबई का, जो लोग मासूमों की हत्या के गुनाहगार थे, जिन पर दंगे में शामिल होने का आरोप था, उन्हें तो अदालत से सज़ा मिल रही है या मिल जाएगी. लेकिन ये लोग तो उन घटनाओं के पैदल सैनिक हैं. ये समाज के वे लोग हैं, जिन्होंने बहकावे में आकर दंगे के दौरान इंसानियत को शर्मशार किया, लेकिन जो लोग मास्टरमाइंड थे, उन्हें कोई सज़ा नहीं मिली. जब लिब्रहान कमीशन की रिपोर्ट आई, षड्यंत्रकारियों का पर्दाफ़ाश हुआ, देश को सांप्रदायिकता की आग में झोंकने वाले संगठनों के नाम सामने आए, उन नेताओं के नाम आए जिन्होंने इस आग को हवा दी, तो फिर क्या वजह है कि सरकार उनके ख़िलाफ़ कोई भी कार्रवाई करने से चूक गई. मुस्लिम समुदाय को सरकार ने निराश किया. उनके सामने इस रिपोर्ट पर होने वाली राजनीतिक रस्साकशी देखने के अलावा कुछ नहीं बचा है. सरकार की इस अकर्मण्यता का नतीजा यही निकलेगा कि मुसलमान ख़ुद को पहले से ज़्यादा अलग–थलग और हताश महसूस करेंगे.

हैरानी की बात यह है कि जिन्हें कमीशन ने गुनहगार बताया है, वे प्रेस कांफ्रेंस कर रहे हैं. टीवी पर आकर यह बता रहे हैं कि उन्हें इसका कोई ग़म नहीं है. वे कह रहे हैं कि उन्होंने जो किया, वह सही किया.

मनमोहन सिंह सरकार अगर न्याय में विश्वास रखती है और राजनीतिक फ़ायदा–नुक़सान देखे बिना कोई ठोस क़दम उठाती तथा निर्णायक कार्रवाई करती है तो ठीक, नहीं तो कांग्रेस की सरकार पर भी उसी तरह उंगली उठाई जाएगी, जिस तरह 1992 की नरसिम्हा राव सरकार पर उंगलियां उठ रही हैं. इतिहास में तो यही लिखा जाएगा कि कांग्रेस की एक सरकार ने बाबरी मस्जिद को गिरने दिया और दूसरी ने बाबरी मस्जिद के गुनहगारों को छोड़ दिया.

manish@chauthiduniya.com

फोटो–*सुनील मल्होत्रा*

चौथी दुनिया
देश का पहला साप्ताहिक अखबार

वर्ष 1 अंक 40, 14 दिसंबर–20 दिसंबर 2009

संपादक
संतोष भारतीय

मैसर्स अंकुश पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड के लिए मुद्रक व प्रकाशक रामपाल सिंह भदौरिया द्वारा जागरण प्रकाशन लिमिटेड डी 210–211 सेक्टर 63, नोएडा उत्तर प्रदेश से मुद्रित एवं के – 2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली 110001 से प्रकाशित

संपादकीय कार्यालय

के –2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग
कनॉट प्लेस, नई दिल्ली 110001

कैंप कार्यालय एफ–2, सेक्टर –11, नोएडा
गौतमबुद्ध नगर उत्तर प्रदेश – 201301

फोन न.
संपादकीय 011–23418962
विज्ञापन + 0120–4783999
प्रसार + 91 9810017924
फैक्स न. 0120–4783950

पृष्ठ–16 (+4 बिहार व झारखंड)

चौथी दुनिया में छपे सभी लेख अथवा सामग्री पर चौथी दुनिया का कॉपीराइट है. बिना अनुमति के किसी लेख अथवा सामग्री के पुनः प्रकाशन पर क़ानूनी कार्रवाई की जाएगी.

समस्त कानूनी विवादों का क्षेत्राधिकार दिल्ली न्यायालयों के अधीन होगा.

भोपाल गैस दुर्घटना के लगभग तीन दशक बीत चुके हैं. इस हादसे ने कितनों की जान ली, सभी जानते हैं. परेशानी ख़त्म नहीं हुई है. अब उस फैक्ट्री के कचरे से लोग जानलेवा बीमारियों के शिकार हो रहे हैं, लेकिन सरकार चुपचाप तमाशा देख रही है.

भोपाल गैस त्रासदी

कचरा, राजनीति और जनता का दर्द

ढाई दशक का समय कम नहीं होता, लेकिन पीड़ितों के आंसू पोछने की बात कौन कहे, शासन यूनियन कार्बाइड का ज़हरीला कचरा ही मौक़े से नहीं हटवा सका है, जो आज भी जनता के स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ कर रहा है. शायद इसी को कहते हैं, अंधेर नगरी–चौपट राजा.

संध्या पाण्डे

लाखों लोगों को मौत के मुंह में ढकेलने अथवा अपंग बना देने वाली विश्व की भीषणतम औद्योगिक दुर्घटना भोपाल गैस त्रासदी को राज्य सरकार ने महज़ एक साधारण दुर्घटना मान रखा है. सरकार का कोई भी अधिकारी–कर्मचारी इस पर चर्चा करने के लिए सहज तैयार नहीं दिखता.

2/3 दिसंबर 1984 की रात हुए भोपाल गैस कांड को 25 वर्ष बीत चुके हैं, लेकिन यूनियन कार्बाइड कारखाने में पड़ा हज़ारों टन मलवा आज भी शहर के लोगों के शरीर में धीमा ज़हर घोल रहा है. मध्य प्रदेश सरकार इस मलवे को लेकर अभी भी असमंजस की स्थिति में है. सरकार के कुछ ज़िम्मेदार अधिकारी बड़ी लापरवाही से कहते हैं कि कारखाने के मलवे से कोई ख़तरा नहीं है, लेकिन रसायन विशेषज्ञ मलवे की गहन छानबीन के बाद बताते हैं कि इसमें आज भी काफ़ी ज़हरीले रसायन मिले हुए हैं, जो हर साल बरसात के मौसम में प्राकृतिक जल में घुलकर कारखाने के आसपास के तीन–चार किलोमीटर तक के क्षेत्र की मिट्टी और भूमिगत जल को प्रदूषित कर रहे हैं. सेंटर फॉर साइंस एंड एन्वायरमेंट की निदेशक सुनीता नारायण ने बताया कि जब राज्य सरकार ने इस मलवे की रासायनिक जांच कराने में कोई रुचि नहीं ली तो इनके संगठन ने केंद्रीय पर्यावरण मंत्री और केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण मंडल की अनुमति तथा राज्य के प्रदूषण नियंत्रण मंडल के सहयोग से भोपाल के मध्य स्थित यूनियन कार्बाइड कारखाने के साथ–साथ आसपास के क्षेत्रों की मिट्टी एवं भूमिगत जल के नमूने प्रयोगशाला जांच के लिए एकत्र करने में सफलता हासिल की. जांच के बाद पता चला कि जो घातक रसायन कारखाने की मिट्टी और पानी में घुले हुए हैं, वे ही कारखाने के आसपास के तीन–चार किलोमीटर तक के क्षेत्र की मिट्टी और पानी में घुले पाए गए. सीसा, पारा और अन्य कई प्रकार के ज़हरीले रसायनों के अलावा कई हैवी मेटल्स घुले होने की वजह से यहां का पानी मनुष्य के शरीर के लिए धीमे ज़हर का काम कर रहा है. पुराने भोपाल में गैस पीड़ितों की बीमारियां लगातार गंभीर हो रही हैं और अब वे नई–नई बीमारियों के शिकार हो रहे हैं. लेकिन सरकार को इसकी कोई चिंता नहीं है.

यूनियन कार्बाइड कारखाने की ज़मीन की क़ीमत आज अरबों में है. राज्य सरकार इस भूमि का अधिग्रहण करना चाहती है. सरकार को इस बात की जल्दी तो है कि मलवा हटे और कारखाने की ज़मीन खाली हो, लेकिन यह ख़र्चीला, मुश्किल और जोख़िम भरा काम है. 1989 और 1991 में सर्वोच्च न्यायालय ने यूनियन कार्बाइड कारखाने में शेष बचे कचरे और मलवे के निपटान के बारे में निर्देश दिए थे, लेकिन कारखाने ने इस ख़र्चीले और जोख़िम भरे काम से बचने के लिए अपने शेयर एक भारतीय कंपनी को बेच दिए. वर्ष 1997 में इस कंपनी यानी एवरेडी इंडस्ट्रीज इंडिया लिमिटेड ने नागपुर के एक प्रतिष्ठित संस्थान से मलवे की जांच कराई, लेकिन इसके निष्कर्ष आज तक गुप्त रखे गए. एवरेडी यहां इलेक्ट्रॉनिक उद्योग लगाना चाहती थी, लेकिन शायद इस जगह मौजूद प्रदूषण के कारण इसने अपना फ़ैसला बदल दिया.

चूंकि मलवे को हटाने और कारखाने को प्रदूषण मुक्त करने के लिए 1000 करोड़ रुपये ख़र्च आने का अनुमान है, इसलिए यूनियन कार्बाइड ने उच्च न्यायालय में साफ़ कह दिया कि एकमुश्त मुआवजा भुगतान के बाद इस संबंध में अब उसकी कोई ज़िम्मेदारी नहीं बचती है. अत: मलवा हटाने का काम उस पर नहीं थोपा जा सकता है. न्यायालय ने आदेश दिया है कि लगभग 390 टन ज़हरीले मलवे को एकत्र कर उसे उपचारित किया जाना चाहिए. 2007 के इस आदेश के बाद लगभग 40 टन मलवा धार ज़िले के पीतमपुर भेज दिया गया. गुजरात सरकार इस मलवे को लेने से साफ़ मना कर दिया है और वह मामले को सर्वोच्च न्यायालय तक ले गई है.

इसी बीच राज्य सरकार के मंत्री बाबूलाल गौर ने कारखाने को जनता के लिए खोल देने की घोषणा करके ज़हरीले मलवे के मामले को अगंभीर बना दिया. गौर ने कहा कि जब लोग यहां आएंगे तो उनकी वह धारणा दूर हो जाएगी कि कारखाने में अभी भी ख़तरनाक रसायनों का असर मौजूद है. गौर ने एक प्रयोगशाला की जांच का हवाला देकर कहा कि कारखाने में ख़तरनाक ज़हरीले तत्व नहीं पाए गए. राज्य सरकार की इस अगंभीरता के कारण कारखाने से मलवा हटाने का काम टल गया है. यूनियन कार्बाइड की फैक्ट्री के आसपास लगभग तीन किलोमीटर के दायरे में पिछले 15 वर्षों में आबादी काफ़ी तेज़ी से बढ़ी है. अन्य क्षेत्रों की तुलना में यहां खांसी, दमा, सांस, पीलिया, टीबी, कैंसर और त्वचा–फेफड़े से संबंधित रोगों से पीड़ितों की संख्या आश्चर्यजनक रूप से ज़्यादा है.

शाकिर अली चिकित्सालय के डॉक्टर बताते हैं कि यहां आने वाले लोगों में आंखों और फेफड़ों की बीमारियां आम हैं. डॉक्टर ममता मिश्रा कहती हैं, हमें हर रोज़ क्रॉनिक ऑब्स्ट्राक्टिव पल्मनरी डिसऑर्डर के 50 से ज़्यादा केस देखने को मिलते हैं. यूनियन कार्बाइड के ठीक पीछे बसी नव जीवन कॉलोनी की निवासी राजपति बाई की बेटी दुर्घटना के समय छह महीने की थी. दस वर्ष की आयु में उसे वर्टिलिगो (सफ़ेद दाग) हो गया और तभी से उसका वजन लगातार घट रहा है. भोपाल गैस कांड के बाद केंद्र सरकार की पहल पर यूनियन कार्बाइड से पीड़ितों को मुआवजा और राहत दिलाने के लिए 470 मिलियन डॉलर यानी लगभग 750 करोड़ रुपये की धनराशि का समझौता हुआ था. कंपनी ने यह राशि केंद्र सरकार को दे दी, लेकिन लगभग दो वर्षों तक मुआवजा वितरण प्रक्रिया तय न होने के कारण यह धन भारतीय रिजर्व बैंक में जमा रहा, जिस पर ब्याज मिलता रहा. 1989 में मुआवजा वितरण किस्तों में तय किया गया और एक बड़ी धनराशि बैंक में जमा रह जाने से सरकार को ब्याज की कमाई होती रही. 750 करोड़ रुपये की मूल राशि ब्याज मिलाकर 3000 करोड़ रुपये हो गई. सरकार ने लगभग 5.74 लाख लोगों को 1.549 करोड़ रुपये का नकद मुआवजा वितरण 15 वर्षों में किया. इसके अलावा लगभग 512 करोड़ रुपया पीड़ितों के इलाज पर ख़र्च होना बताया गया. आज भी लगभग 1000 करोड़ रुपया मुआवजा मद में बैंक में जमा है और उस पर लगातार ब्याज भी मिल रहा है. भोपाल गैस पीड़ितों के लिए काम कर रहे संगठनों का कहना है कि पीड़ितों को अभी और मुआवजा मिलना चाहिए.

लोगों का यह भी कहना है कि राज्य सरकार के गैस राहत मंत्री बाबूलाल गौर अपने चुनाव क्षेत्र के निवासियों को न्याय दिलाने के लिए उन्हें गैस पीड़ित घोषित कर मुआवजा दिलाना चाहते हैं, लेकिन इसे वास्तविक पीड़ित स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं.

क़ातिल एंडरसन कहां है?

दो/तीन दिसंबर 1984 की उस काली रात का गुनहगार और हज़ारों मौत का ज़िम्मेदार है वारेन एंडरसन. यूनियन कार्बाइड का मालिक एंडरसन. उसके प्रत्यर्पण के लिए भारत सरकार ने अमेरिका से अनुरोध भी कर रखा है, लेकिन 25 साल बीत जाने के बाद अभी तक भोपाल के इस क़ातिल को अदालत की चौखट तक ला पाने में भारत सरकार और सीबीआई असफल रही है. ऐसा इसलिए, क्योंकि एंडरसन को सज़ा दिलवाने की मंशा और इच्छा शक्ति सरकार के पास नहीं है. एक दस्तावेज के मुताबिक़ पिछले 25 सालों में एंडरसन के प्रत्यर्पण के प्रयासों पर सीबीआई ने महज़ 2 लाख रुपये ख़र्च किए. जबकि मोनिका बेदी को पुर्तगाल से भारत लाने के लिए सीबीआई ने करोड़ों रुपये बहा दिए थे. यदि दो लाख रुपये का हिसाब लगाया जाए तो एक बार अमेरिका आने–जाने का ख़र्च भी इससे ज़्यादा पड़ता है. ज़ाहिर है, उक्त दस्तावेज भोपाल गैस पीड़ितों को न्याय दिलाने को लेकर सीबीआई और भारत सरकार की मंशा को साफ़ कर देता है.

feedback@chauthiduniya.com

परदे के पीछे भी हुआ खेल

रतन टाटा इस देश की एक जानी–मानी हस्ती हैं. इनके और इन जैसे लोगों के बयान से देश की अर्थव्यवस्था का बैरोमीटर यानी सेंसेक्स का पारा ऊपर–नीचे होने लगता है. यही रतन टाटा तीन साल पहले मनमोहन सिंह सरकार को एक पत्र भेजते हैं. इस सुझाव के साथ कि भोपाल गैस कांड से प्रभावित स्थल की साफ़–सफ़ाई के लिए 100 करोड़ रुपये का एक फंड या ट्रस्ट बनाया जाए. सुझाव के मुताबिक़, टाटा कंपनी और अन्य भारतीय उद्योगपति मिलजुल कर ऐसा एक ट्रस्ट तैयार कर सकते हैं. तीन साल बीत गए, लेकिन रतन टाटा के इस प्रस्ताव का अब तक कोई अता–पता नहीं है. ज़ाहिर है, सरकार के इस रवैये से भोपाल गैस पीड़ितों को लेकर हमारे देश के प्रधानमंत्री और समूची शासन प्रणाली की उदासीनता एवं संवेदनहीनता का ही पता चलता है.

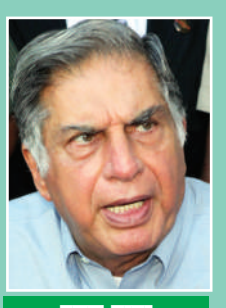

रतन टाटा

दरअसल, इस पूरे मसले को समझने के लिए अतीत में जाना पड़ेगा. दिसंबर 1984 की उस काली रात को याद कीजिए, जब यूनियन कार्बाइड कारखाने से निकली मिथाइल आइसो साइनाइड गैस (मीक गैस) ने रातों–रात भोपाल शहर को श्मशान में बदल डाला था. 25 वर्षों बाद भी उस त्रासदी से मिले ज़ख्म भरे नहीं हैं. आज भी इस शहर के कई हिस्सों का पानी पीने के लायक़ नहीं है. कारखाने के कचरे से रिस–रिसकर ज़हरीला रसायन भू–जल में मिल रहा है. लोग असाध्य बीमारियों से ग्रसित हैं. कारखाने में फैले रासायनिक और ज़हरीले कचरे की अब तक सफ़ाई नहीं की जा सकी है. इस बीच पहले एवरेडी और फिर अमेरिकी कंपनी डाओ केमिकल ने यूनियन कार्बाइड को ख़रीद लिया, लेकिन इनमें से कोई भी यहां अपना काम शुरू नहीं कर सका. वजह, एक ओर जहां गैस पीड़ित अपने लिए मुआवज़े की मांग कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर भारत सरकार का रसायन एवं पेट्रो केमिकल मंत्रालय 2005 में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय पहुंच गया. मंत्रालय ने अदालत से अनुरोध किया कि डाओ को 100 करोड़ रुपये जमा कराने का आदेश दिया जाए, ताकि गैस प्रभावित स्थल की सफ़ाई में उसका इस्तेमाल किया जा सके. लेकिन डाओ का कहना है कि वह उस दुर्घटना के लिए ज़िम्मेदार नहीं है, इसलिए पैसा जमा करने का सवाल ही न हीं उठता.

इस पूरी कहानी के दो पहलू हैं. पहला यह कि डाओ किसी भी क़ीमत पर 100 करोड़ रुपये जमा करने के लिए तैयार नहीं है. वहीं दूसरी ओर रतन टाटा के साइट रेमेडिएशन फंड बनाने के प्रस्ताव पर सरकार की तरफ़ से कोई पहल नहीं हुई. हालांकि तत्कालीन वित्त मंत्री पी चिदंबरम और वाणिज्य मंत्री कमलनाथ टाटा के इस सुझाव से सहमत थे. प्रधानमंत्री को दी गई अपनी रिपोर्ट में उन्होंने यह कहा था कि इस सुझाव पर विचार किया जाना चाहिए. यह एक अलग बात है कि टाटा ने यह पत्र तब लिखा, जब डाओ द्वारा 100 करोड़ रुपये देने का मामला अदालत में विचाराधीन है. अदालत में यह तय होना बाक़ी है कि पैसा देने के लिए डाओ बाध्य है अथवा नहीं. यह सवाल भी उठा कि आख़िर रतन टाटा के प्रस्ताव के पीछे कहीं डाओ को 100 करोड़ रुपये जमा कराने की जवाबदेही से मुक्त कर देने की मंशा तो नहीं थी. ग़ौरतलब है कि रतन टाटा इंडो–यूएस सीईओ फोरम के को–चेयरमैन हैं. इससे अलग चौथी दुनिया के पास उपलब्ध दस्तावेज़ के मुताबिक़, भारत की सबसे बड़ी पेट्रो केमिकल कंपनी के मालिक मुकेश अंबानी और डाओ के बीच पेट्रो केमिकल क्षेत्र में तकनीकी सहयोग से जुड़ा एक समझौता भी हो चुका है, लेकिन 100 करोड़ रुपये का मामला डाओ की भारत यात्रा में रुकावट बना हुआ है.

इस मामले में सबसे ज़्यादा पिस रहे हैं गैस पीड़ित लोग. उनके लिए यह सवाल महत्वपूर्ण नहीं है कि 100 करोड़ रुपये कौन देगा. यह रक़म चाहे सरकार दे, टाटा दें या डाओ. लेकिन यदि इस रक़म से साफ़–सफ़ाई का काम हो जाता तो यह राहत देने वाली बात होती. सरकार की असंवेदनशीलता का एक नमूना तब देखने को मिला, जब केंद्रीय पर्यावरण मंत्री जयराम रमेश भोपाल यात्रा पर आए. वह यूनियन कार्बाइड परिसर में फैले कचरे को अपने हाथ से छूकर मीडिया को दिखा रहे थे. शायद वह कहना चाहते थे कि यहां के लोग झूठ बोलते हैं कि यह कचरा ख़तरनाक है. लो मैंने इसे छू लिया, मुझे तो कुछ नहीं हुआ.

शशि शेखर
shashishekhar@chauthiduniya.com

कोई भी क़ानून किसी अच्छे उद्देश्य के लिए लाया जाता है, लेकिन उसका ग़लत इस्तेमाल लोगों को परेशानी में डाल देता है. आर्म्ड फोर्सेस (स्पेशल पावर) एक्ट एएफएसपीए के साथ भी कुछ ऐसा ही है.

एएफएसपीए के विरोध में शर्मिला वर्ष 2000 से अनशन पर हैं.

सिर्फ़ एक क़ानून ने ज़िंदगी दुश्वार कर दी

देश के दो सबसे संवेदनशील भू-भाग. एक तो उत्तर में भारत का सिरमौर जम्मू-कश्मीर और दूसरा देश के उत्तर पूर्व का हिस्सा. दोनों ही जगहों के लोग और सिविल सोसाइटी औपचारिक तौर पर पहली बार नवंबर में एक साथ नज़र आए. वे आर्म्ड फोर्सेस (स्पेशल पावर) एक्ट 1958 को ख़त्म करने की मांग करने के लिए एकजुट हुए थे. दिल्ली में इनकी बैठक हुई, जिसमें ज़मीनी स्तर पर काम करने वाले कई संगठनों ने हिस्सा लिया. वे एकजुट होकर एएफएसपीए के ख़िलाफ़ अभियान चलाने पर सहमत हुए. उनका विचार था कि इस अधिनियम ने लोकतांत्रिक आकांक्षाओं को दबा दिया है. यह क़ानून अगर और भी लंबे समय तक चलता रहा तो हिंसा का दौर गहराता ही चला जाएगा. प्रतिभागियों के बीच इस बात को लेकर आम सहमति थी कि राजनीतिक अस्थिरता की मूल वजह को ख़त्म करने के लिए ज़रूरी लोकतांत्रिक संभावना तभी तलाशी जा सकती है, जबकि इस क़ानून को ख़त्म कर दिया जाए. एएफएसपीए, जिसे पूर्वोत्तर राज्य के पहले विद्रोही संगठन नागा काउंसिल को नेस्तनाबूद करने के लिए लाया गया था, आतंकवाद को जड़ से ख़त्म कर पाने में सक्षम नहीं है. आज असम और मणिपुर में कम से कम 75 आतंकवादी संगठन हैं और इस क्षेत्र के दूसरे राज्यों में भी कई भूमिगत संगठन हैं. ठीक इसी तरह, जम्मू-कश्मीर में भी 1990 में आर्म्ड फोर्सेस (जम्मू-कश्मीर) स्पेशल पावर एक्ट लाया गया, लेकिन यह आतंकवाद का सफ़ाया नहीं कर पाया. बोडो वुमेन जस्टिस फोरम की अंजलि दाईमारी जो कि पेशे से कॉलेज शिक्षिका हैं, कहती हैं कि अगर सैनिकों की तैनाती ही आतंकवाद को क़ाबू में रखने का सही समाधान होता तो विद्रोह की समस्या का हल 51 वर्ष पहले ही हो गया होता. हम हिंसा की वक़ालत नहीं करते, लेकिन बोडो हथियार उठाने को क्यों बाध्य हुए, इसके भी कई कारण हैं. ज़्यादातर लोग ऐसे हैं, जो लोकतांत्रिक तरीक़े से अपने अधिकार की लड़ाई लड़ रहे हैं, लेकिन जब उनकी आवाज़ नहीं सुनी जाती है तो निराशा में वे हथियार उठाने को बाध्य हो जाते हैं. दाईमारी ख़ुद भी टाडा की शिकार रही हैं. 1993 में तथाकथित तौर पर असम पुलिस ने उनका और उनके भाई का अपहरण कर लिया और उनकी आंखों पर पट्टी बांधकर दस दिनों तक अज्ञात जगह पर अपने क़ब्ज़े में रखा. वह ख़ुलासा करती हैं कि पुलिस उनके मुंह से यह कहलाना चाहती थी कि हमारा किसी सशस्त्र समूह ने अपहरण कर लिया था और हमें पुलिस ने उनके क़ब्ज़े से मुक्त कराया. उनके परिवार वालों ने अदालत में बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका दायर कर रखी थी कि पुलिस ने यह स्वीकार किया है कि उसने उन्हें गिरफ्तार कर रखा है. दाईमारी और उनके परिवार पर हमले अब भी जारी हैं. ख़ुद उन्हें छह माह तक बंदी बनाकर रखा गया. बगैर वारंट के गिरफ़्तारी व तलाशी और गोलीबारी, भले ही उससे मौत ही क्यों न हो जाए, आदि कुछ ऐसी शक्तियां हैं जिन्हें एएफएसपीए के ज़रिए क़ानूनी वैधता प्रदान की गई है. उत्पीड़न और हत्या के मामलों की लंबी होती सूची से सुरक्षाबलों द्वारा इन शक्तियों के व्यापक पैमाने पर दुरुपयोग का पता चलता है. दिल्ली में आयोजित बैठक के प्रबंधकर्ताओं में से एक अदर मीडिया के रवि हेमाद्री के मुताबिक़, केंद्र सरकार अक़्सर बलात्कार और हत्या जैसे मामलों में भी जांच के आवेदन को मंजूरी नहीं देती है. नौकरशाही आंदोलनकारियों के अपहरण और हत्या के बड़े मामलों में तभी सक्रिय हुई, जब लोगों की ओर से विरोध हुआ. इनमें श्रीनगर में 1996 में प्रमुख मानवाधिकार कार्यकर्ता जलील अंदराबी के अपहरण और हत्या का मामला, इंफाल में 32 वर्षीय थंगजाम मनोरमा–जिसे असम राइफल ने उठाया था–की हत्या, तथाकथित तौर पर फ़र्ज़ी मुठभेड़ में चुंगखाम संजीत की हत्या और हाल ही में इस साल जुलाई में गर्भवती महिला रबिना देवी की हत्या आदि के मामले शामिल हैं. ऐसे आरोपों की जांच के लिए सरकार ने कई कमेटियां गठित कीं, लेकिन उनकी अनुशंसाएं दिन के उजाले में कहीं नज़र नहीं आईं. जांच के लिए गठित ऐसी कुछ कमेटियों में बी पी जीवन रेड्डी कमेटी (2005), प्रशासनिक सुधार कमेटी (2007) और जम्मू-कश्मीर में जनता का विश्वास जगाने के लिए गठित मुहम्मद हामिद अंसारी कार्य समूह (2007) आदि प्रमुख हैं. कुछ अंतरराष्ट्रीय संगठनों जैसे संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार कमेटी (1996), एक्स्ट्रा जुडिशियल समरी ऑफ आर्बिटरी एक्जक्यूशन पर संयुक्त राष्ट्र की स्पेशल रिपोर्ट (2006), महिलाओं के साथ भेदभाव के ख़ात्मे पर विचार करने के लिए बनी कमेटी (2007) और जातीय भेदभाव को ख़त्म करने पर विचार करने के लिए गठित कमेटी आदि ने भी इस मसले पर अपनी आवाज़ बुलंद की. जम्मू-कश्मीर दौरे के वक़्त गृहमंत्री पी चिदंबरम ने मीटिंग में एएफपीएसए के मुद्दे पर मुख्यमंत्री उमर अब्दुल्ला के साथ बातचीत होने के बारे में मीडिया को जानकारी देते हुए कहा, मैंने मुख्यमंत्री उमर अब्दुल्ला को इस मामले को देखने का आश्वासन दिया है. मुझे रक्षा मंत्री और प्रधानमंत्री जी से इस बारे में बात करनी है.

एएफएसपीए के विरोध में प्रदर्शनकारी

एएफएसपीए, जिसे पूर्वोत्तर राज्य के पहले विद्रोही संगठन नागा काउंसिल को नेस्तनाबूद करने के लिए लाया गया था, आतंकवाद को जड़ से ख़त्म कर पाने में सक्षम नहीं है. आज असम और मणिपुर में कम से कम 75 आतंकवादी संगठन हैं और इस क्षेत्र के दूसरे राज्यों में भी कई भूमिगत संगठन हैं.

जम्मू-कश्मीर के कुछ राजनीतिक दल इस आधार पर इस क़ानून को ख़त्म करने की मांग कर रहे हैं कि यह क़ानून सुरक्षाबलों को संकटग्रस्त इलाक़ों में ऑपरेशन की पूरी स्वतंत्रता देती है. दिल्ली की बैठक में हिस्सा लेने वाले अंजुम जमरूद हबीब गृहमंत्री चिदंबरम की कही बातों से ज़रा भी प्रभावित नहीं हैं. मुस्लिम खवातीन मरकज और कश्मीरी प्रिजनर के परिवार के संगठन से जुड़ी एक कार्यकर्ता की शिकायत है कि सुरक्षाबलों ने बहुत सारी संपत्तियां हथिया ली हैं. वह कहती हैं, बड़ी मात्रा में सैनिकों की तैनाती से हम अपना पता तक खो चुके हैं. सड़क संकेतकों के नाम भी अब आर्मी आउट पोस्ट और बंकरों के आधार पर रखे जा रहे हैं.

इस मसले पर पीडीपी की महबूबा मुफ़्ती ने अभियान शुरू किया है. ह्यूमन राइट अलर्ट के बबलू लोइतोंगबाम के मुताबिक़, सबसे बड़ी चुनौती यह थी कि लोग अपने अनुभव के आधार पर इस मसले को वृहत फलक पर समझें. रवि हेमाद्रि इशारा करते हैं, दो क्षेत्रों–जम्मू कश्मीर और उत्तर पूर्व को एक कॉमन प्लेटफॉर्म पर लाना एक बड़ी चुनौती थी. फ़िलहाल जम्मू-कश्मीर की अवाम ने असैन्यीकरण के ऊपर अपना ध्यान केंद्रित कर रखा है तो नागा केंद्र सरकार के साथ शांति प्रक्रिया वार्ता में मशगूल हैं. जहां तक असमी लोगों की बात है तो वे उल्फा और असम सरकार के बीच शांति बहाली से जुड़ी बातचीत पर सारा ध्यान केंद्रित किए हुए हैं. केवल मणिपुर ही है, जो एएफएसपीए के ख़िलाफ़ अकेले ही इस मुहिम की अगुवाई कर रहा है. इंफाल के निकट मालोम में दस निर्दोष नागरिकों की हत्या के बाद वहां नवंबर 2000 से ही इरोम शर्मिला चानू अनिश्चितकालीन अनशन पर हैं.

अंजलि दाइमारी को लगता है कि सरकार को अपना ध्यान समस्या के मूल कारण की ओर लगाना चाहिए. वह कहती हैं, आज़ादी के 62 वर्षों के बाद भी यहां अस्पताल, स्कूल, बिजली और पानी की समस्या है. कोई भी उनकी समस्या नहीं सुन रहा है. जब आतंकी किसी ग़रीब के घर में आते हैं तो वह उन्हें अपने मुक्तिदाता के रूप में देखता है. आतंकी उस ग़रीब को इस बात के लिए आश्वस्त करते हैं कि हथियार उठाना ही ग़रीबी से मुक्ति पाने का रास्ता है.

बुला देवी
feedback@chauthiduniya.com

असम में क्यों नाकाम रही क्षेत्रवाद की राजनीति

दिनकर कुमार

असम में क्षेत्रवाद की राजनीति के भविष्य को लेकर इन दिनों काफ़ी चर्चाएं हो रही हैं. इस चर्चा के केंद्र में है असम गण परिषद. अपनी स्थापना के साथ ही यह राजनीतिक दल जनता का ध्यान आकर्षित करता रहा है. अगप यानी असम गण परिषद की गतिविधियों में स्थानीय मीडिया की भी ख़ासी दिलचस्पी रहती है. छह वर्षों तक चले विदेशी बहिष्कार आंदोलन के गर्भ से अगप का जन्म हुआ था और उस समय इसे जनता का ज़बरदस्त समर्थन प्राप्त हुआ था. अगप ने दो बार विधानसभा चुनावों में जीत हासिल कर राज्य में अपनी सरकार भी बनाई. इसने कांग्रेस के परंपरागत वोट बैंक में सेंध लगाकर उसे पराजित करने का करिश्मा कर दिखाया था. दरअसल, कांग्रेस का शुरू से ही मानना रहा कि जब तक अली-कुली यानी मुसलमान एवं चाय बागान के मज़दूर असम में हैं, तब तक उसे कोई नहीं हरा सकता. सबसे पहले गोलाप बरबरा के नेतृत्व में जनता पार्टी की सरकार ने कांग्रेस के दर्प को चूर किया और फिर अगप ने. एक समय वह भी था, जब अगप क्षेत्रवाद का प्रतीक बन गई थी. स्वाभाविक तौर पर आज यह सवाल फिर सामने खड़ा है कि क्या अगप फिर सरकार बनाने में सफल हो पाएगी?

ऐसा भी नहीं है कि असम में अगप के वजूद में आने से पहले कोई क्षेत्रीय दल नहीं था. जानकार बताते हैं कि कोच राजवंशी समुदाय के लिए पृथक उदयाचल राज्य की मांग के पीछे एक कांग्रेसी नेता का हाथ था, जो बाद में मुख्यमंत्री बन गए और अपनी मांग को भूल गए. लेकिन आज भी कोच राजवंशी समुदाय पृथक कमतापुर राज्य के लिए आंदोलन चला रहा है. उत्तर कछार को स्वशासी राज्य बनाने के लिए भी एक क्षेत्रीय दल का गठन किया गया था, जिसे बाद में उत्तर कछार स्वशासी जिला परिषद में शासन करने का अवसर भी मिला. इसी तरह अलग बोडो लैंड के लिए चलाए गए आंदोलन के पीछे भी क्षेत्रवाद की धारणा रही.

फोटो – प्रभात पाण्डेय

ऊपरी असम में अलग राज्य के समर्थन में क्षेत्रवाद की हवा चलती रही है. इस तरह के क्षेत्रवाद की जड़ें किसी न किसी जनजाति से जुड़ी रही हैं. असम के मूल निवासियों के अधिकारों और उनकी संवैधानिक सुरक्षा की मांग करते हुए असम जातीयतावादी दल का गठन किया गया था. इसी नज़रिए के साथ गठित पूर्वांचलीय लोक परिषद का लक्ष्य असम के पड़ोसी राज्यों में पनपने वाली क्षेत्रवादी राजनीति के साथ तालमेल क़ायम करना था. इन दोनों दलों का सांगठनिक ढांचा भले ही कमज़ोर था, लेकिन आम लोगों के बीच दोनों दल काफ़ी लोकप्रिय हुए थे. जब बाद में अगप की स्थापना हुई तो तकरीबन सभी क्षेत्रीय दलों का उसमें विलय हो गया. यही वजह है कि क्षेत्रवादियों ने अगप से काफ़ी उम्मीदें लगा रखी थीं, लेकिन सत्ता में आने के बाद अगप जनता की आशाओं-अपेक्षाओं की कसौटी पर खरी नहीं उतर सकी. अगप के कुशासन ने उसके समर्थकों का दिल तोड़ दिया. मज़े की बात यह है कि पहले कार्यकाल की नाकामियों से नाराज़ होने के बावजूद जनता ने अगप को एक और मौक़ा दिया, लेकिन अपने दूसरे कार्यकाल में भी उसके चरित्र में कोई बदलाव नहीं दिखाई पड़ा.

ग़ौरतलब है कि जिस तरह आज़ादी मिलने के बाद देश के सभी स्वतंत्रताप्रिय नागरिकों ने कांग्रेस का समर्थन किया था, ठीक उसी तरह अगप भी असम की शोषित-वंचित और परिवर्तन चाहने वाली जनता की पार्टी बनकर राजनीतिक परिदृश्य पर उभरी थी. ऐसी स्थिति में सवाल यह उठता है कि प्रबल जन समर्थन मिलने के बावजूद अगप किसी तरह का बदलाव ला पाने में सफल क्यों नहीं हो पाई? जानकारों का मानना है कि राजनीति के क्षेत्र में अगप के नेताओं की अनुभवहीनता के चलते स्थिति बिगड़ी. विदेशी बहिष्कार आंदोलन की अगुवाई अखिल असम छात्रसंघ (आसू) के नेताओं ने की थी. इसी तरह असम गण परिषद का नेतृत्व भी छात्रनेताओं के हाथ में था, लेकिन असम आंदोलन के व्यापक फलक पर जिस तरह असम साहित्य सभा, असम युवक समाज, शिक्षक संघ, अधिवक्ता संघ, क्षेत्रीय दलों और जनजातीय छात्रसंघों की भागीदारी देखी गई थी, उसे छात्रनेताओं ने भुला दिया और अगप के भीतर गैर छात्रनेताओं की उपेक्षा होने लगी. इसके अलावा अगप को अपने जन्म के साथ ही सत्ता मिल गई, जो उसके लिए बेहद नुक़सानदेह साबित हुई. अल्प समय में ही मंत्री-विधायक बन जाने से छात्रनेता सत्ता की गरिमा और दायित्वों को समझ नहीं सके. यही नहीं, अगप में जो वरिष्ठ-बुज़ुर्ग नेता थे, उन्हें राजनीति की मुख्यधारा से दूर ही रखा गया.

असम की क्षेत्रवादी राजनीति के लिए सबसे घातक साबित हुआ अगप द्वारा कांग्रेसी संस्कृति का अनुकरण. जनता को दोनों दलों में समानता नज़र आने लगी. जिस तरह कांग्रेस ने भ्रष्टाचार को संगठित तरीके से बढ़ावा दिया, उसी तरह अगप के नेता भी भ्रष्टाचार में लिप्त हो गए. अगप के शासनकाल में आलू, प्याज, चावल, नमक और बीज सहित कई वस्तुओं के घोटाले सामने आए, जो कांग्रेस के शासनकाल में हुए घोटालों से कम नहीं थे. कांग्रेस के शासनकाल में जहां उल्फा का जन्म हुआ, वहीं अगप के शासनकाल में यह उग्रवादी संगठन मज़बूत होता चला गया. इसके बाद तो दर्ज़नों उग्रवादी संगठन बनते चले गए. इनमें से कई तो बांग्लादेश में अड्डे बनाकर पाकिस्तानी और बांग्लादेशी संगठनों के इशारों पर काम करने लगे.

असम की मूल समस्याएं क्या हैं, उनका विश्लेषण करने के बाद ही अगप अपने भविष्य की राह तैयार कर सकती है. और, इन तमाम समस्याओं को पैदा करने में कांग्रेस की भूमिका क्या रही है, इस पहलू पर विचार करने से ही असम की क्षेत्रवादी राजनीति की प्रासंगिकता अच्छी तरह समझी जा सकती है.

feedback@chauthiduniya.com

फोटो – पीटीआई

तिब्बतियों के धर्मगुरु दलाई लामा को पूरा यक़ीन है कि चीन में एक दिन लोकतंत्र ज़रूर आएगा, क्योंकि वहां की स्थितियां लगातार बदल रही हैं. लोग मीडिया और न्यायपालिका की स्वतंत्रता की वकालत कर रहे हैं.

रंगनाथ मिश्र कमीशन की रिपोर्ट

सरकार को घेरने की तैयारी

चौथी दुनिया अख़बार में रंगनाथ मिश्र कमीशन की रिपोर्ट छपने के बाद देश के विभिन्न राजनीतिक दलों ने ख़ासी एकजुटता दिखाई है. आसार इस बात के हैं कि आने वाले दिन सरकार के लिए भारी साबित हो सकते हैं.

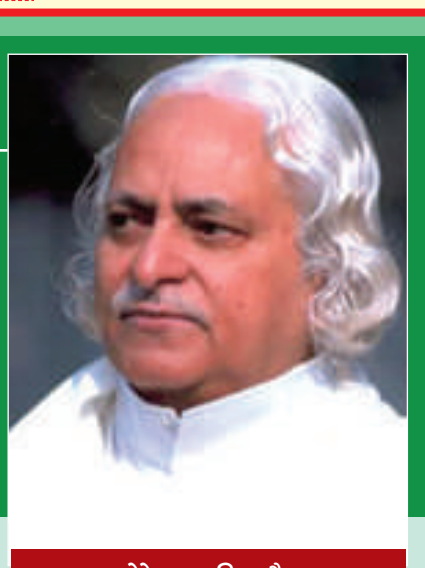

रूबी अरुण

राजनीतिक दलों में उबाल आ चुका है. रंगनाथ मिश्र कमीशन की अनुशंसाओं को संसद में पेश करने की मांग को लेकर राजनीतिक पार्टियां सरकार के ख़िलाफ़ आंदोलन की रूपरेखा तैयार कर चुकी हैं. समाजवादी पार्टी इस मसले को लेकर जंतर-मंतर पर धरना-प्रदर्शन करने वाली है. भाजपा, जदयू, राजद एवं लोजपा के सांसद भी संसद और चौथी दुनिया अख़बार के ज़रिए सरकार पर दबाव बना रहे हैं. इस मसले पर कोहराम मचा हुआ है, पर सरकार ने इस पर बिल्कुल चुप्पी साध रखी है. लिब्रहान आयोग की रिपोर्ट लीक होने के मुद्दे पर चौतरफ़ा घिरी यूपीए सरकार अब रंगनाथ मिश्र कमीशन की रिपोर्ट चौथी दुनिया में छप जाने के बाद सांसत में पड़ी दिख रही है. समाजवादी पार्टी के अध्यक्ष मुलायम सिंह यादव कहते हैं कि सरकार तो इस कमीशन की अनुशंसाओं पर ग़र्द डाल चुकी थी. अगर चौथी दुनिया ने इस रिपोर्ट को नहीं छापा होता तो यूपीए सरकार देश के ग़रीब दलित मुस्लिमों और दलित ईसाइयों के हक़ों के साथ खिलवाड़ करने का पूरा मन बना चुकी थी, लेकिन अब ऐसा नहीं हो पाएगा, क्योंकि चौथी दुनिया अख़बार और इसके संपादक संतोष भारतीय ने देश की राजनीतिक पार्टियों को सरकार के ख़िलाफ़ एक पुख्ता आधार दे दिया है. इसकी बिना पर हम सरकार को इस बात के लिए मजबूर कर देंगे कि वह रंगनाथ मिश्र कमीशन की अनुशंसाओं पर न सिर्फ़ संसद में बहस कराए, बल्कि उन्हें लागू भी करे. समाजवादी पार्टी के महासचिव अमर सिंह ख़ासे उत्तेजित हैं. इस मसले पर वह यूपीए सरकार पर बरस पड़ते हैं. कहते हैं कि सरकार ने कमीशन का गठन दलित मुसलमानों और दलित ईसाइयों की आंखों में धूल झोंकने के लिए किया. दरअसल सरकार यह चाहती ही नहीं कि देश का यह कमज़ोर तबका तरक्की करे या आगे बढ़े. यूपीए सरकार सिर्फ़ अपने मतलब का खेल, खेल रही है. अमर सिंह कहते हैं कि उत्तर प्रदेश में 2010 में विधानसभा चुनाव होने हैं, इसलिए सरकार अपने वोट बैंक की चिंता में कमीशन की रिपोर्ट को संसद में पेश नहीं कर रही है. अमर सिंह सवाल करते हैं कि जब दूसरी जाति के लोगों को आरक्षण दिया जा रहा है तो मुसलमानों को बाहर क्यों रखा जा रहा है? सरकार आरक्षण के मसले पर दोहरा मानदंड क्यों अपना रही है? सरकार को इस बात का जवाब देना ही होगा.

ज़ाहिर है, चौथी दुनिया में रंगनाथ मिश्र कमीशन की रिपोर्ट छपने के बाद सरकार पर इसे संसद में पेश करने को लेकर दबाव बेहद बढ़ चुका है. रंगनाथ मिश्र कमीशन की सिफ़ारिशें ऐसी हैं, जिन पर आसानी से अमल नहीं हो सकता. कमीशन ने जो सिफ़ारिशें दी हैं, उनके मुताबिक़ केंद्र सरकार और राज्य सरकार की नौकरियों में सभी कैडर और ग्रेड के पदों पर अल्पसंख्यकों को 15 फ़ीसदी आरक्षण दिया जाएगा. शिक्षा में भी यह आरक्षण 15 फ़ीसदी होगा. इसमें दस फ़ीसदी हिस्सा मुसलमानों को दिया जाएगा. जो अल्पसंख्यक उम्मीदवार सामान्य मेरिट लिस्ट में होंगे, वे आरक्षण सीमा से बाहर होंगे. मुस्लिम और ईसाई दलितों को अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति की सूची में शामिल किया जाएगा.

राजद के राज्यसभा सांसद जाबिर हुसैन कहते हैं कि सरकार जानबूझ कर कमीशन की सिफ़ारिशों पर चर्चा करने से बच रही है. सरकार को पता है कि इस पर चर्चा होते ही विपक्षी पार्टियां सरकार पर तुष्टीकरण का आरोप लगाकर उसे घेर लेंगी. आयोग की रिपोर्ट पिछले दो सालों से धूल खा रही है, पर सरकार ने जानबूझ कर इसे हाशिए पर डाल दिया है. सरकार के लिए कमीशन की रिपोर्ट गले की हड्डी बन चुकी है, जिसे वह न निगल पा रही है और न ही उगल पा रही है. सरकार को यह अच्छी तरह पता है कि अल्पसंख्यकों को आरक्षण देने का मसला बेहद ही संवेदनशील है.

अली अनवर

जदयू के राज्यसभा सांसद एन के सिंह भी जाबिर हुसैन की बातों पर सहमति जताते हैं. वह कहते हैं कि आंध्र प्रदेश में मुस्लिमों को आरक्षण देने की कोशिश पर हुआ बवाल सरकार भूली नहीं है. वह रिपोर्ट टेबल करने के पहले सभी पहलुओं का नफ़ा-नुक़सान आंक लेना चाहती है. अगर सरकार अल्पसंख्यकों को आरक्षण देती है तो उसे बहुसंख्यकों की नाराज़गी झेलनी पड़ेगी. और, अगर ज़्यादा दिनों तक सरकार इस मसले को लटकाती है तो अल्पसंख्यकों का गुस्सा उस पर उतर सकता है. ऐसी हालत सरकार के लिए बेहद दुरूह है.

बात बिल्कुल सही है. फ़िलहाल सरकार इस स्थिति में तो है ही नहीं कि वह कमीशन की रिपोर्ट में ज़्यादा बड़ा फेरबदल किए बग़ैर उसे लागू करा सके. हालांकि इसी साल के लोकसभा चुनाव के दरम्यान अपने घोषणापत्र में कांग्रेस ने यह कहा था कि वह तमिलनाडु, केरल और कर्नाटक की आरक्षण नीति को राष्ट्रीय स्तर पर लागू कराने के लिए पूरी तरह तत्पर है, पर अब सरकार अलग राग अलाप रही है. कांग्रेस प्रवक्ता जयंती नटराजन कहती हैं कि हमें पूरे मुद्दे की जांच करनी होगी. हम ऐसा कुछ बिल्कुल नहीं कर सकते, जो क़ानूनन नामुमकिन हो.

प्रोफेसर जाबिर हुसैन

मुलायम सिंह यादव

अमर सिंह

एन के सिंह

चौथी दुनिया अख़बार को राज्यसभा में लहराकर इस मसले को ज़ोर-शोर से उठाने वाले जदयू सांसद अली अनवर अंसारी और राजद सांसद राजनीति प्रसाद का मानना है कि सरकार के अलावा विपक्षी दलों में बैठे कुछ ऐसे मुस्लिम सांसद हैं, जो नहीं चाहते हैं कि रंगनाथ मिश्र कमीशन की रिपोर्ट लागू हो. उन्हें इस बात की चिंता है कि अगर किसी भी तरह रिपोर्ट की अनुशंसाएं लागू हो गईं और मुसलमानों को आरक्षण मिल गया तो वे पढ़-लिखकर तरक्की कर जाएंगे. फिर उनके बीच धर्म आधारित सियासत का गंदा खेल नहीं खेला जा सकता. वहीं समाजवादी पार्टी के राज्यसभा सांसद कमाल अख्तर दावे के साथ कहते हैं कि चाहे राजनीतिक पार्टियां जितना भी ज़ोर लगा लें, रिपोर्ट की अनुशंसाएं सरकार लागू करने वाली नहीं. क्योंकि, जब इस मसले पर बहस होगी तो सवाल यह भी उठेगा कि आख़िर ऐसी क्या वजह रही कि आज़ादी के इतने सालों के बाद भी मुसलमान और ईसाई इतने पिछड़े हुए हैं? तब ठीकरा कांग्रेस के सिर ही फूटेगा. ज़ाहिर है, उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव के पहले कांग्रेस ऐसी तोहमत नहीं लेना चाहेगी. फिर भी विपक्षी दलों की यह पुरज़ोर कोशिश होगी कि सरकार को इस मसले पर इतना मजबूर कर दिया जाए कि उसे संसद में इस पर बहस करानी ही पड़े.

बहरहाल, सरकार के ख़िलाफ़ इस मुद्दे पर जो राजनीतिक गोलबंदी दिख रही है, उस लिहाज़ से लिब्रहान कमीशन पर चर्चा होने के बाद रंगनाथ कमीशन पर संसद में हंगामा होने के पूरे आसार हैं. यक़ीनन इसका सेहरा चौथी दुनिया के माथे ही बंधता है.

ruby@chauthiduniya.com

दलाई लामा को चीन में लोकतंत्र आने की उम्मीद

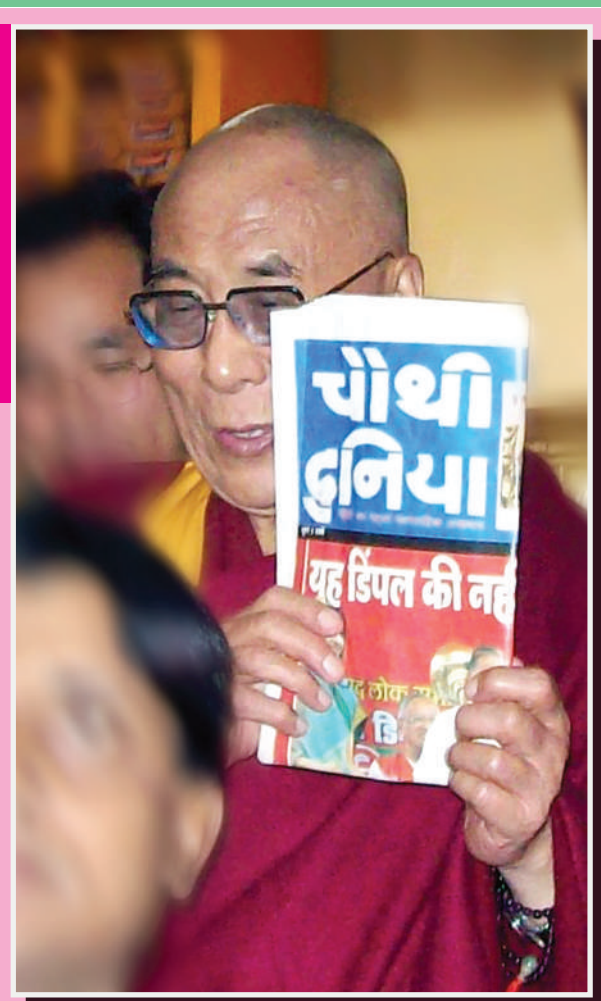

राजकुमार शर्मा

तिब्बतियों के धर्मगुरु दलाई लामा को पूरी उम्मीद है कि चीन में लोकतंत्र के आगमन में अब ज़्यादा देर नहीं है. वह कहते हैं कि गांधीजी के अहिंसा के मार्ग पर चलकर हम पूरे चीन में लोकतंत्र लाना चाहते हैं. पूरा विश्वास है कि पूरे चीन में लोकतंत्र के पक्ष में जो हवा चल रही है, उसे किसी भी हालत में वहां की सत्ता के शिखर पर बैठे लोग रोक नहीं पाएंगे. दलाई लामा ने कहा कि अमेरिका की तिब्बत के प्रति प्रतिबद्धता की बात पर उन्हें किसी तरह की आशंका नहीं है. अमेरिकी राष्ट्रपति ओबामा तिब्बत की स्वायत्तता का संरक्षण करते हैं. दलाई लामा पिछले दिनों हिमाचल प्रदेश के धर्मशाला स्थित मैलोडगंज के चुगंलाखंग बौद्धमठ में आईएफडब्ल्यूजे के बैनर तले पत्रकारों को संबोधित कर रहे थे.

दलाई लामा के अनुसार, ओबामा ने अपने चुनाव के समय भी उनसे बात कर तिब्बत की स्वायत्तता का समर्थन किया था. उन्होंने ओबामा के चीन जाने से पहले उनसे इसलिए मुलाकात नहीं की, ताकि चीन किसी पूर्वाग्रह से ग्रसित न हो जाए. उनसे मिलकर जाने पर इस बात की आशंका थी कि चीन अमेरिका के ख़िलाफ़ कोई भी कड़ा रुख अपना सकता था. उन्होंने उम्मीद जताई कि अगले साल ओबामा से उनकी मुलाकात ज़रूर होगी. दलाई लामा कहते हैं, हमने चीन के संविधान के अंतर्गत रहकर ही तिब्बत की स्वायत्तता की मांग की है, लेकिन चीन के मन में भय है, इसलिए वह हमें अलगाववादी के रूप में प्रचारित करता रहता है. हमारे प्रयास के ठोस नतीजे अभी तक भले ही न निकले हों, लेकिन आज स्थितियां पूरे चीन में बदल रही हैं. जनता का भी मन बदल रहा है. वहां के हजारों शिक्षकों, पत्रकारों, लेखकों और न्यायपालिका से जुड़े लोगों ने हमसे मिलकर बदलाव की बात कही है. चीन की वर्तमान शासन व्यवस्था काफ़ी पुरानी हो चुकी है, जनता अब बदलाव का मन बना रही है. लोग चाहते हैं कि मीडिया एवं न्यायपालिका स्वतंत्र रहे और लोकतंत्र क़ायम हो.

दलाई लामा ने बताया कि तिब्बत की स्वायत्तता के सवाल पर अब तक आठ बार उनकी चीन से वार्ता हो चुकी है. वह कहते हैं कि मैं तो गांधीजी के जीवन के एक छोटे से भाग अहिंसा के मार्ग का अनुयायी हूं. उन्होंने नेल्सन मंडेला की भी सराहना की और कहा कि उनकी पहली प्रतिबद्धता सद्भावना एवं अहिंसा के सिद्धांत को विश्व के कोने-कोने तक पहुंचाना है, क्योंकि इसके बिना न कोई लक्ष्य हासिल हो सकता है और न ही विश्व में शांति कायम हो सकती है.

आतंकवाद पर गहरी चिंता व्यक्त करते हुए दलाई लामा ने कहा कि इसका मुक़ाबला जनता को शिक्षा एवं जनजागरण के हथियार से लैस करके अहिंसा के मार्ग को अपनाने के आत्मबल द्वारा ही किया जा सकता है. वर्तमान विश्व में राष्ट्रीय सीमाएं महत्वहीन होती जा रही हैं. पूरा विश्व एक देश के रूप में विकसित हो रहा है और सभी देश एक दूसरे पर निर्भर हैं. ऐसे में अकेले रहकर कोई महान नहीं हो सकता. उन्होंने कहा कि हम भारतीय हैं, धर्मशाला और भारत हमारे घर जैसा है. हमने भारत में 50 वर्ष रहकर लोकतंत्र को पलते-बढ़ते देखा है. हमने यहीं रहकर सीखा कि लोकतंत्र क्या है? इसी से प्रभावित होकर हमने अपने स्तर पर 2001 से निर्वासित तिब्बतियों की भी लोकतांत्रिक सरकार का गठन किया है.

नक्सलियों को चीनी हथियार!

भारत के नक्सलियों को चीन द्वारा घातक हथियार एवं प्रशिक्षण दिया जा रहा है. इस बात का ख़ुलासा तिब्बत की निर्वासित सरकार के प्रधानमंत्री प्राफ़ेसर सेमडोंग रिनपोछे ने किया. 1959 में चीन के तिब्बत पर हमले के समय दलाई लामा के साथ भारत आए बौद्ध दर्शन के प्रचारक प्रोफ़ेसर रिनपोछे ने आतंकवाद के पोषक राष्ट्रों की तुलना उन मूर्खों से की, जो उसी डाल को काटते हैं, जिस पर वे बैठे होते हैं. उन्होंने भारतीय बाज़ार में चीन के माल की बिक्री को लघु उद्योगों के लिए ख़तरा बताते हुए सरकार की चुप्पी पर भी सवाल खड़ा किया.

feedback@chauthiduniya.com

विद्यालयों को यातनागृह बनने से बचाने के लिए एक कारगर सामाजिक पहल बहुत ज़रूरी है. इस दिशा में अभिभावकों, स्कूल प्रबंधन और सरकार को आगे आना चाहिए.

इस भटकाव की वजह क्या है

महेंद्र अवधेश

अनुशासन के नाम पर छात्रों के प्रति शिक्षकों का रवैया कभी-कभी ख़ासा अमानवीय हो जाता है. हाल की कुछ घटनाएं इसका प्रमाण हैं. आख़िर क्या हो गया है हमारे गुरुजनों को?

बीती 15 नवंबर को राष्ट्रीय राजधानी की एक अदालत ने एक ऐसे शिक्षक को एक लाख रुपये मुआवजे की सजा से दंडित किया, जिसने आज से 12 वर्ष पहले एक छात्र को पूरे दिन निर्वस्त्र खड़ा रखा था. अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश प्रतिभा रानी ने अपने फैसले में उक्त शिक्षक को निर्देश दिया कि वह बतौर मुआवजा एक लाख रुपये पीड़ित छात्र को अदा करे. घटना 25 मई 1997 की है. दिल्ली के एक राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय के शिक्षक पी सी गुप्ता ने अपनी कक्षा के एक तेरह वर्षीय छात्र को विद्यालय के तालाब में नहाते हुए पकड़ लिया. गुप्ता उस छात्र के कृत्य से इतने नाराज हुए कि उन्होंने पहले उसे जमकर पीटा, फिर पूरे समय तक विद्यालय में निर्वस्त्र खड़ा रखा. बाद में अभिभावकों ने उनके खिलाफ पुलिस में शिकायत दर्ज कराई, मुकदमा चला और 19 मार्च 2007 को निचली अदालत ने गुप्ता को एक वर्ष की कैद और ढाई हजार रुपये जुर्माने की सजा सुना दी. गुप्ता इन दिनों अपनी सजा काट रहे थे. उन्होंने निचली अदालत के उसी फैसले को चुनौती दी थी. उनकी अपील के आलोक में न्यायमूर्ति प्रतिभा रानी ने अपना ताजा फैसला दिया है. अच्छे व्यवहार की शर्त पर गुप्ता को दो वर्ष की परिवीक्षा अवधि पर रिहा करने से पहले न्यायमूर्ति प्रतिभा रानी ने उनकी हरकत की कड़े शब्दों में निंदा भी की.

पिछले कुछ दिनों से इस तरह की घटनाएं अक्सर ही सुनने-पढ़ने को मिलती रहती हैं, जिनमें मामूली सी गलती पर शिक्षकों द्वारा छात्र-छात्राओं को बड़ी बेरहमी से दंडित किए जाने की बात सामने आती है. ऐसी घटनाएं जनसामान्य को सहज ही चिंतित कर देती हैं. स्वाभाविक है, अभिभावक या माता-पिता बच्चों को बहुत विश्वास के साथ विद्यालय भेजते हैं, उनके भविष्य और सुरक्षा के प्रति निश्चिंत रहते हैं. लेकिन, जब ऐसी घटनाएं प्रकाश में आती हैं तो उनका सारा विश्वास डगमगा जाता है. पिछले एक वर्ष के अंदर ऐसी कई घटनाएं हो चुकी हैं. 7 अगस्त 2009 को फरीदाबाद में एक इंटर कॉलेज के उप प्रधानाचार्य ने बारहवीं कक्षा के छात्र मनदीप को पीटकर बुरी तरह जख्मी कर दिया था. पिटाई से मनदीप के हाथ की नस कट गई और उसे अस्पताल में दाखिल कराना पड़ा. इसी तरह 25 जुलाई 2009 को कानपुर में कक्षा नौ के छात्र नमन प्रजापति को उसके शिक्षक ने ऐसा जोरदार थप्पड़ रसीद किया कि उसके कान का पर्दा ही फट गया.

ऐसी घटनाएं हमारी उस चिंता को और गहरा करती हैं, जो गत वर्ष 24 अक्टूबर को राजधानी दिल्ली के मुखर्जी नगर के सरकारी स्कूल के शिक्षक द्वारा आठवीं कक्षा के एक छात्र का हाथ तोड़ने, उससे पहले टैगोर इंटरनेशनल स्कूल की प्रिंसिपल द्वारा सातवीं कक्षा की छात्रा पर तमाचों की बौछार कर उसके कान का पर्दा फाड़ने, ग्रेटर नोयडा के सिरसा स्थित ऑक्सफोर्ड ग्रीन स्कूल की शिक्षिका द्वारा चौथी कक्षा की छात्रा को बेरहमी से पीटे जाने और फरीदाबाद जिले के गौंछी गांव के राजकीय माध्यमिक विद्यालय में आठवीं कक्षा की छात्रा के चेहरे पर उसकी शिक्षिका द्वारा ये लड़की पढ़ नहीं सकती लिखकर पूरी क्लास में घुमाने से उपजी थी. फरीदाबाद का मनदीप उन पांच छात्रों में शामिल था, जिन्हें कुछ दिन पूर्व एक मामूली शरारत की वजह से कॉलेज से निलंबित कर दिया गया था. माफी मांगने गए मनदीप को वाइस प्रिंसिपल ने इस कदर पीटा कि उसके हाथ की नस ही कट गई. खबर पाकर मौके पर पहुंचे उसके पिता ने उसे अस्पताल में दाखिल कराया. शिकायत करने पर कॉलेज प्रबंधन ने उल्टे मनदीप को ही कुसूरवार ठहराते हुए अपना पल्ला झाड़ लिया.

कानपुर की घटना में नमन का अपराध मात्र इतना था कि वह अपने शिक्षक मयंक पाल राठौर से बिना अनुमति लिए पानी पीने चला गया था. जब इस बात की शिकायत

अभिभावकों ने प्रिंसिपल से की तो उन्होंने दो टूक जवाब दिया कि बच्चे का दाखिला किसी दूसरे विद्यालय में करा लीजिए. यानी दोषी शिक्षक बगैर किसी जांच-कार्यवाही के साफ बरी निकल गया. राजधानी दिल्ली के मुखर्जी नगर स्थित राजकीय सीनियर सेकेंडरी स्कूल में आठवीं कक्षा के छात्र गर्वित को उसके अशोक चौहान सर ने डंडे से इस कदर पीटा कि उसका हाथ टूट गया. पिटाई से बेहाल गर्वित घर पहुंचते ही बेहोश हो गया. मां मंजू गोला उसे लेकर तुरंत बाड़ा हिंदूराव अस्पताल भागीं. खबर पाकर पुलिस भी मौके पर पहुंची और उसने संबंधित शिक्षक के खिलाफ मुकदमा दर्ज कर लिया. बाद में पता चला कि गर्वित का कुसूर यह था कि वह अपने उन सीनियर सहपाठियों के साथ खड़ा था, जिन्होंने आरोपी शिक्षक को कुछ देर पहले अपशब्द कहे थे. टैगोर इंटरनेशनल स्कूल वाली घटना में लव दुआ और प्रकृति दुआ नामक भाई-बहन यहां क्रमश: पहली व सातवीं कक्षा के विद्यार्थी थे. एक दिन प्रिंसिपल ने उनकी मां को बुलाकर बच्चों की शिकायत की. इसी दौरान प्रिंसिपल को न जाने क्या सूझा कि उन्होंने प्रकृति की कमीज का कॉलर और बाल पकड़कर उस पर थप्पड़ों की बरसात कर दी. पिटाई के बाद छात्रा की श्रवण शक्ति पर नकारात्मक प्रभाव हुआ. डॉक्टरी जांच में पता चला कि उसके कान का पर्दा ही फट चुका है. अभिभावकों ने मामले की शिकायत पुलिस से की, लेकिन उनकी कोई सुनवाई नहीं हुई. लिहाजा उन्होंने फिर अदालत का दरवाजा खटखटाया.

सिरसा (ग्रेटर नोयडा) स्थित ऑक्सफोर्ड ग्रीन स्कूल में चौथी कक्षा की छात्रा आयुष सेन को उसकी शिक्षिका ममता ने लोहे के स्केल से बुरी तरह पीटा था. वजह, आयुष ने लंचटाइम में अपने सहपाठियों से गप्प लड़ाने की जुर्रत कर डाली थी. घायल आयुष को अस्पताल ले जाना पड़ा. बाद में उसकी मां ने कासना थाने में आरोपी शिक्षिका के खिलाफ मुकदमा दर्ज कराया. गौंछी (फरीदाबाद) वाले प्रकरण में शिक्षिका संगीता की करतूत पीड़ित छात्रा के डर के चलते शायद दबी ही रह जाती, लेकिन उसकी चचेरी बहन ने घर आकर पूरी कहानी परिवारवालों को बता दी. यहां छात्रा का अपराध सिर्फ इतना था कि वह अपना होमवर्क पूरा नहीं कर पाई थी. जानकारी मिलते ही गांववालों ने विद्यालय को घेर लिया. छात्रा के पिता ने प्रधानाचार्य से शिकायत की, लेकिन कोई सुनवाई न होने से मामला बिगड़ गया और फिर पुलिस को हस्तक्षेप करना पड़ा. बाद में जिला शिक्षा अधिकारी ने आरोपी शिक्षिका को निलंबित कर दिया. राजधानी दिल्ली समेत देश के विभिन्न हिस्सों में आएदिन ऐसी घटनाएं सुनने-पढ़ने को मिलती रहती हैं. इससे अभिभावकों के दिल हमेशा आशंकित रहते हैं कि कब कौन सा शिक्षक-शिक्षिका उनके बच्चे के साथ बदसलूकी कर गुजरे. कई घटनाएं तो ऐसी भी हो चुकी हैं कि मामूली सी गलती पर बच्चे को ऐसी सजा दे दी गई कि अभिभावकों ने भयवश उसे स्कूल से ही निकाल लिया. सच तो यह है कि गली-मुहल्ले में खुलने वाले कथित मांटेसरी पब्लिक स्कूलों में पढ़ाने वाले शिक्षक-शिक्षिकाएं अपनी अल्प, अपर्याप्त और सीमित आमदनी के चलते अक्सर अनेक दिक्कतों से दो-चार रहते हैं. उन्हें अपनी काबिलियत का सही मोल न मिल पाने की कुंठा वक्त-बेवक्त सताती रहती है.

लेकिन, इसका मतलब यह तो कतई नहीं है कि नियोजकों के प्रति उपजा गुस्सा किसी मासूम पर उतारा जाए. सरकारी स्कूलों के शिक्षक तो इसके अपवाद हैं. उन्हें पर्याप्त वेतन और सुविधाएं हासिल हैं, बावजूद इसके वे भी संवेदनशून्य होते जा रहे हैं. असल चिंता तो यह है कि आखिर शिक्षकों को होता क्या जा रहा है? उनमें हिंसा कैसे और क्यों घुसपैठ करती जा रही है? कहीं उनके प्रशिक्षण में तो कोई कमी नहीं रह जाती अथवा बाल मनोविज्ञान न समझ पाने की खीझ उन्हें हिंसक व अमानवीय बनने को मजबूर कर रही है? वजह चाहे जो भी हो, हालात बहुत गंभीर हैं. बच्चों के मन में स्कूल और शिक्षकों के प्रति जो भय घर करता जा रहा है, वह बहुत चिंतनीय है. इसका इलाज कानूनी कार्यवाही, निलंबन या बदले में मार-पिटाई से संभव नहीं है. बल्कि, इसके विभिन्न पहलुओं पर ध्यान देकर ही कोई सार्थक समाधान निकाला जाना चाहिए, ताकि शिक्षकों और शिक्षा के मंदिरों की गरिमा बरकरार रहे तथा अभिभावकों के लगातार दरकते विश्वास को तार-तार होने से बचाया जा सके.

mahendra@chauthiduniya.com

यौनकर्मी या सेक्सवर्कर की भी अपनी ज़िंदगी है, इस ज़िंदगी की पीड़ा भी है. सबसे बडी पीड़ा तो उनकी अपनी पहचान ही है. दरअसल समाज का नज़रिया इसके लिए ज़िम्मेदार है. नज़रिया बदलेगा तो उनकी ज़िंदगी भी बदलेगी.

यौनकर्मियों के बच्चे

ख़ुद ही लिख डाली ज़ुल्म-ओ-सितम की दास्तां

बिमल राय

वर्ष 2004 में अमेरिकी महिला फ़िल्मकार जाना ब्रिस्की एवं जॉन कुफमैन ने सोनागाछी की यौनकर्मियों के बच्चों पर एक डाक्युमेंट्री फ़िल्म बनाई–*बोर्न इनटू ब्रोथेल्स*. इसे साल की सर्वश्रेष्ठ डाक्युमेंट्री फ़िल्म का अवार्ड मिला. 2004 में इसे लेकर कुछ वैसा हो–हल्ला मचा, जैसे इस वर्ष *स्लमडॉग मिलेनियर* को लेकर मचा था. इनके बच्चों को फोटोग्राफी सिखाने के बहाने दोनों फ़िल्मकारों ने यौनकर्मियों की अंतरंग ज़िंदगी के भीतर तक झांका. एक बच्चे को तो एमस्टर्डम की फोटोग्राफी कांफ्रेंस तक में भेजा गया. इस फ़िल्म ने दोनों हाथों से डॉलर कमाए और एक हिस्सा सोनागाछी की यौनकर्मियों के बच्चों के लिए भी ख़र्च किया.

उक्त बच्चे कुछ समय तक लाइम लाइट में रहे और फिर सारा मामला जस का तस हो गया. कुछ जमालों और लतिकाओं की ज़िंदगी में कुछ समय के लिए बहार आई, पर बाक़ी बच्चों को अभी भी किसी तारणहार का इंतज़ार है. फ़िल्मकारों ने इन फोटोग्राफर बच्चों के कपड़ों में छिपे हुए कमरे लगाए और तब पता चला कि यौनकर्मियों के बच्चों का बचपन कितना दर्दनाक होता है. ग्राहक को संतुष्ट कर रही यौनकर्मी और बैकग्राउंड में चीखते दुधमुंहे बच्चे की आवाज़. फ़िल्म के जारी होने के बाद कुछ स्वयंसेवी संगठनों ने इस फ़िल्म के ख़िलाफ़ आवाज़ भी उठाई. कहा गया कि यौनकर्मियों को बेरहम दिखाया गया है. वे कितनी संगठित हो रही हैं या उनमें अपने अधिकारों के प्रति कितनी जागरूकता है, इस बारे में फ़िल्म में कुछ नहीं कहा गया.

कोई शक़ नहीं कि इन फ़िल्मकारों का इरादा भी पश्चिमी बाज़ार में भारत की गंदगी को बेचना था, पर परदे पर बच्चों की असल ज़िंदगी साफ़–साफ़दिखी. स्वयंसेवी संगठनों के दो–चार होम और दो–चार स्कूल खोल देने भर से इनकी ज़िंदगी बदलती नहीं दिखती. इनमें से ज़्यादातर संगठनों के प्रयास केवल एक प्रतीक अथवा प्रेरणा पैदा करते हुए प्रतीत होते हैं. कुछ बच्चे माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक और दस–बीस स्नातक स्तर तक पहुंच जाते हैं, लेकिन हालात से मजबूर होकर वे फिर उन्हीं अंधेरी गलियों में चले आते हैं. ताउम्र अपनी पहचान छिपाने की कोशिश चलती है और वे खुद को कभी सामान्य महसूस नहीं कर पाते. स्वयंसेवी संस्थाओं की प्रेरणा से कुछ बच्चे अपने जन्मदिन पर हैप्पी बर्थ डे टू यू वाला अंग्रेज़ी गाना भले ही गा लेते हों, पर अभी तक ऐसा कुछ नहीं हो सका है, जिससे इन बच्चों के भविष्य के प्रति आश्वस्त हुआ जा सके.

हां, कुछ ऐसे बच्चे भी हैं, जो हालात बदलने में लगे हैं. कोलकाता के कालीघाट की एक यौनकर्मी की संतान मृणाल कांति दत्त उर्फ़ बाच्चू को भी कहां पता था कि ईश्वर उन्हें किसी यौनकर्मी के गर्भ से पैदा करेगा, लेकिन ताउम्र मुंह छुपाकर जीने का शाप वह नहीं भोगना चाहता था. वह आज अपना जन्मदिन इसलिए मनाता है कि उसे अपने जैसे लाखों बच्चों को एक नई राह दिखानी है. बचपन में बाच्चू की मासूम आंखों ने देखी हैं शोषण और अत्याचार की अनगिनत वारदातें. पुलिस, गुंडों, मौसियों और दलालों की चौकड़ी से घिरी यौनकर्मी किस तरह हर समय क़त्लगाह के पशु की तरह थर–थर कांपती है. कभी इन बदनसीब औरतों में उसकी मां भी होती थी. मां को रोते देख उसका बाल मन भी बग़ावत कर उठता. उसने इस चौकड़ी के ख़िलाफ़ लोहा लेने की ठानी. उसे सोनागाछी प्रोजेक्ट के मुखिया डॉ. स्मरजीत जाना का साथ मिला. तमाम बाधाओं के बावजूद कॉलेज तक पहुंचने वाले बाच्चू ने दो किताबें भी लिखी हैं, जिनमें महिला और पुरुष यौनकर्मियों की पीड़ा और संघर्ष की आंखों देखी कहानियां दर्ज़ हैं. यौनकर्मीदेर जीवन सत्य और वृहन्नालादेर जीवन सत्य नामक पुस्तकों में उसने बचपन से जवानी तक देखे और भोगे गए यथार्थ को पेश किया है.

बाच्चू ने एक ऐसे समाज में आंखें खोली थीं, जहां लड़कों के जन्म पर उतनी खुशी नहीं होती, जितनी लड़की के जन्म पर. लड़की जनने वाली एक मां अपने भविष्य को सुरक्षित मानकर भले ही कुछ समय के लिए संतुष्ट हो जाती हो, मगर बच्चों के बड़े होने पर वह उन्हें उनके पिता का नाम नहीं बता पाती. समाज ने ऐसी माताओं को पतिता का नाम दिया है. कोलकाता के कालीघाट, जहां पूरे देश के लोग मां काली का दर्शन करने के लिए आते हैं, से सटी एक बदनाम बस्ती में जन्मा बाच्चू जैसे-जैसे बड़ा होता गया, इस अभिशाप से मुक्त होने की उसकी छटपटाहट बढ़ती गई.

बकौल बाच्चू, छोटी उम्र में मुझे अपनी पहचान के बारे में नहीं पता था. कुछ बड़ा होने पर मां ने चेतला के एक स्कूल में भेज दिया, पर पहचान गोपनीय रही. जब मुझे सच का पता चला तो काफ़ी दुःख हुआ, क्योंकि आख़िर मैं एक नाजायज़ संतान था. फिर भी मैंने पढ़ाई जारी रखने की ठानी और मां के साथ ही रहने लगा. बारहवीं की परीक्षा पास करने के बाद मैंने कॉलेज में दाख़िला लिया. एक दिन कॉलेज के एक छात्र ने जब मुझे इस बदनाम बस्ती में देखा तो वह यही समझा कि मैं मौजमस्ती करने आया हूं. अगले दिन टोकने पर मैंने जब उसे सच बताया तो वह दंग रह गया. उस दिन के बाद से शर्म के मारे मैं कॉलेज नहीं गया. जिद करने पर मां ने मेरे पिता के बारे में भी बताया, जो एक अच्छे परिवार से थे. उन्होंने मां को संपत्ति का एक हिस्सा देने का वचन भी दिया था, मगर 1996 में उनका निधन हुआ तो श्राद्ध के कुछ दिनों बाद मां मुझे लेकर उनके घर गई और परिवारवालों को मेरे पिता के वचन की याद दिलाई. घरवालों ने हम दोनों को अपमानित करके भगा दिया. उसके बाद महीनों तक मैं खोया–खोया रहा. इसी दौरान विश्व स्वास्थ्य संगठन ने यौनकर्मियों की बस्तियों में कंडोम बांटने का कार्यक्रम चलाया. इसमें यौनकर्मियों एवं उनकी संतानों का सहयोग लेने का फ़ैसला हुआ तो मैं चुन लिया गया.

बाच्चू की ही अगुवाई में यौनकर्मियों को मजदूर का दर्ज़ा देने की मांग तेज़ हुई. 1999 में एक उल्लेखनीय सफलता तब मिली, जब वाममोर्चा सरकार ने यौनकर्मियों के स्व–शासित निकाय को मंजूरी दे दी. इस निकाय का मक़सद रेडलाइट क्षेत्रों में लड़कियों का शोषण रोकना और यौनकर्मियों को दलालों, पुलिस और गुंडों से बचाना था. यह आज भी सक्रिय है और इसमें राज्य सरकार के सामाजिक कल्याण विभाग एवं राज्य महिला आयोग के कर्मचारी भी शामिल हैं.

बाच्चू ने तय किया कि वह अपनी पहचान सार्वजनिक कर यौन कर्मियों के लिए काम करेगा. सोनागाछी प्रोजेक्ट के निदेशक डॉ. स्मरजीत जाना ने बाच्चू के भीतर की आग को समझा और उसे प्रोत्साहित किया. उन्हीं की कोशिशों से यौनकर्मियों की दुर्वार महिला समन्वय समिति का गठन हुआ. जुलूसों के शहर कोलकाता में अपनी विभिन्न मांगों के समर्थन में यौनकर्मी भी सड़कों पर उतरने लगीं. एड्स के ख़िलाफ़ रैली हो या दुनिया में कहीं भी मानवाधिकारों का हनन, समाज की मुख्य धारा में आने की छटपटाहट लिए यौनकर्मियों ने अपनी आवाज़ बुलंद की और इन सबके पीछे बाच्चू जैसे नेता की भूमिका अहम थी. बाच्चू के लिए वह दिन अहम था, जब उसे विश्व बैंक और सरकार द्वारा संयुक्त रूप से चलाए जाने वाले एचआईवी–एड्स इंटरवेंशन प्रोग्राम का निदेशक बनाया गया. आज बाच्चू की मां नहीं है, पर वह आंसुओं से तर अंधेरी ज़िंदगियों में उजाला लाने का काम करके अपनी मां को श्रद्धांजलि देने में जुटा है.

feedback@chauthiduniya.com

पुस्तकों में यौनकर्मियों की व्यथा

सोनागाछी के ज़्यादातर दलाल उत्तर प्रदेश और बिहार के हैं. यह भी सच है कि इनका यह पेशा पीढ़ी दर पीढ़ी चला आ रहा है. हालांकि यौनकर्मियों के कुछ बच्चे भी यह काम करते हैं. हर दो साल बाद इनकी पंचायत के मुखिया का चुनाव होता है. मुखिया यह देखता है कि दलाल बिरादरी ठीक तरह से काम कर रही है या नहीं. यदि पता चलता है कि किसी दलाल ने दूसरे के इलाक़े में प्रवेश किया है या ग्राहक अथवा यौनकर्मी से बदसलूकी की है तो पूरी पंचायत बैठती है. दोषी पाए जाने पर जुर्माना किया जाता है. जुर्माना होता है हज़ार या 1200 रुपये का बकरा और अपराध की तीव्रता के अनुपात में हज़ार से तीन हज़ार रुपये नकद. जुर्माना न देने पर दलाल को इलाक़े में काम नहीं करने दिया जाता. जुर्माना वसूली के बाद छुट्टी के दिन दलाल कालीघाट जाते हैं और वहां बकरे की बलि दी जाती है. जुर्माने की बाकी रक़म से शाम को भोज का आयोजन होता है.

(यौनकर्मीपल्लीर अत्याचार पुराण)

...तब हमारी हालत काफी दयनीय थी. मां ने सारे जीवन की कमाई 40 तोले भर सोने के गहने बेचकर देश में घर बनाया था. उसके एक साल बाद ही पिता को कैंसर हो गया. जो भी बचत थी, वह पिता की बीमारी में लग गई. इसके बाद तो दिन गिने जाने लगे. धीरे–धीरे तीन माह बाद ही पिता के जीवन का दीप बुझ गया. काफ़ी उम्मीद के साथ मैं मां के साथ अपने पैतृक घर में रहने गया, पर सौतेली मां और पिता के रिश्तेदारों ने कहा कि यहां यौनकर्मी की संतान को रहने का कोई अधिकार नहीं है. यह सुन और प्रताड़ित होकर कालीघाट वापस आ गया. बस्ती के छोटे–छोटे बच्चों को पढ़ा कर गुज़ारा करने लगा. दाल–भात तो दूर की बात, किसी–किसी दिन तो आधा पेट खाकर ही रहना पड़ता.

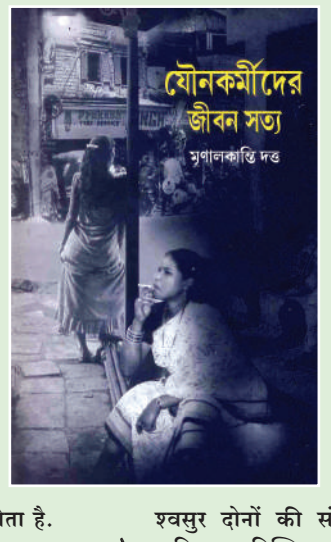

(संचये यौनकर्मीरा)

पहले मैं यहां सामाजिक कारणों की चर्चा करूंगा. देश में जब तक साक्षरता दर नहीं बढ़ती, बाल विवाह–शारीरिक संबंध बनाकर विवाह करने की प्रवृत्ति नहीं रोकी जाती, दहेज प्रथा का उन्मूलन नहीं होता, विधवाओं पर अत्याचार नहीं रुकता और उनके लिए पति एवं श्वसुर दोनों की संपत्ति हासिल करने का अधिकार सुनिश्चित नहीं किया जाता, तब तक इस पेशे में लड़कियों के आने के प्रवाह को नहीं रोका जा सकेगा. देश की ज़्यादातर लड़कियों के निरक्षर होने के कारण उन्हें अपने अधिकारों की जानकारी नहीं है.

(यौनकर्मीदेर जबानबंदी आ तारपर)

इन बच्चियों की चीख क्यों नहीं सुनते क़ानून के रखवाले

यौनकर्मियों के बच्चों को बदनाम बस्तियों की काली छाया से निकालने की छिटपुट कोशिशों के बीच एक सिसकती सच्चाई यह भी है कि लाखों की संख्या में बच्चियां यौन सेवाओं में लगी हैं. एक सर्वेक्षण के मुताबिक़, मुंबई, दिल्ली, चेन्नई,कोलकाता, हैदराबाद और बेंगलुरू की बदनाम बस्तियों के 15 प्रतिशत बच्चे-किशोरियां इस पेशे में हैं. देह व्यापार में इनके शामिल होने की वार्षिक दर 8 से 10 प्रतिशत है. भारत में क़रीब 3 लाख बच्चे यौन सेवाएं दे रहे हैं. इनमें वे भी शामिल हैं, जिनका उपयोग अश्लील फ़िल्में बनाने के लिए किया जाता है. यौन पर्यटन की पश्चिमी अवधारणा के संक्रामक रोग की तरह फैलने के कारण भी बच्चों का यौन शोषण हो रहा है. फरवरी 1996 में मुंबई में पुलिस के हाथों कथित तौर पर मुक्त कराई गईं 456 यौनकर्मियों में एक तिहाई 20 साल से कम उम्र की थीं. इनमें से 91 यौनकर्मी 18 साल से कम की थीं. मोटे अनुमान के मुताबिक़, देह व्यापार में बच्चियों के आने की दर अगर यही रही तो 2025 में हर पांच बच्चियों में से एक बाल यौनकर्मी होगी.

मिसालें अनगिनत हैं. मीना जब 12 साल की थी, तभी उसकी शादी हो गई. दिल्ली में उसका पति ही उसे ले आया और बाद में पता चला कि वह एक दलाल है. 10 वर्षीय माया को उसकी चाची ने ही गोरखपुर लाकर 300 रुपये में बेच दिया. जब उसने एक ग्राहक से यौन संपर्क करने से इंकार किया तो उसे बंद कमरे में पीटा गया. आज चार साल बाद माया मुंबई के एक रेड लाइट इलाक़े में देह बेच रही है. उसका दो साल का बच्चा स्वयंसेवी संगठन जुबली एक्शन रेस्पांस की ओर से चलाए जा रहे होम में है. 13 वर्षीय मीरा को भी नेपाल से मुंबई काम दिलवाने का झांसा देकर लाया गया, पर उसे फॉकलैंड की यौन बस्ती में बेच दिया गया. यौन संपर्क के लिए दूसरी लड़कियों की तरह उस पर भी तरह-तरह के ज़ुल्म किए गए. बाद में उसे 50 हज़ार रुपये में ख़ुद को बेचे जाने का पता चला. उससे कहा गया कि जब तक वह रक़म नहीं चुकाएगी, यहां से जाने की इजाज़त नहीं मिलेगी.

यह भी सही नहीं है कि बाल यौनकर्मी केवल बड़े शहरों की ही उपज हैं, बल्कि छोटे शहरों-कस्बों में भी इनकी तादाद में तेजी से इज़ाफ़ा हो रहा है. बिहार में किए गए एक सर्वे से पता चला है कि सासाराम और औरंगाबाद में रोड के किनारे चलने वाले देह व्यापार में 6 से लेकर 18 साल तक की लड़कियां शामिल हैं. बिहार तो नेपाल से लाई जाने वाली लड़कियों का एक बड़ा रूट बन गया है. अनुमान के मुताबिक़, नेपाल से हर साल 7 हज़ार लड़कियां भारत आती हैं. इनमें से कुछ को तो उनके मां-बाप या अभिभावक ही बेच देते हैं तो कुछ को अच्छी नौकरी या शादी का झांसा देकर लाया जाता है और फिर भेड़-बकरियों की तरह बेच दिया जाता है.

यही हाल पश्चिम बंगाल का है. यहां घुसपैठ की समस्या नासूर बन चुकी है. भाषा बांग्ला होने के कारण घुसपैठिए आसानी से आबादी में घुल-मिल जाते हैं और रेलवे लाइनों, सड़कों व खाली पड़ी सरकारी ज़मीनों पर अपना आशियाना बसा लेते हैं. तस्करों की नज़र इन परिवारों की कमसिन लड़कियों पर जाती है. बताया जाता है कि पंचायतों के प्रधानों से भी इन तस्करों की मिलीभगत रहती है और कमाई का एक हिस्सा उन्हें पहुंचा दिया जाता है. पुलिस मुख्यालय से मिले आंकड़ों के मुताबिक़, वर्ष 2004-2005 के बीच बंगाल के मुर्शिदाबाद ज़िले में 62 लड़कियां लापता हुईं, जिनमें से केवल 13 ही बरामद की जा सकीं. इसी तरह नदिया ज़िले से लापता 813 लड़कियों में से 10, पश्चिम दिनाजपुर की 200 लड़कियों में से मात्र 6, उत्तर 24 परगना की 152 लड़कियों में से 135 और दक्षिण 24 परगना की 41 लड़कियों में से केवल 12 का ही पता चल पाया. इन लड़कियों को भी देश के कई देह बाजारों से मुक्त कराया गया है. इस तरह तमाम क़ानूनों के रहते हुए भी लाखों बच्चियों का बचपन लुट रहा है. यौन पेशे से इन्हें मुक्त कराने के लिए पुलिस पुनर्वास की समस्या का रोना रोती है. कहना ग़लत नहीं होगा कि भ्रष्टाचार के चलते ही इन बच्चियों की चीख क़ानून के रखवालों को नहीं सुनाई देती.

जय तेलंगाना आंदोलन हमेशा से एक लोकतांत्रिक आंदोलन था. लोकप्रिय जनादेश इस बात का सबूत है. लेकिन केंद्रीय नेतृत्व की भूमिका संदिग्ध थी.

सरकार को संविधान से तमाम अधिकार मिले हुए हैं, लेकिन अल्पसंख्यकों की सुरक्षा का मसला आता है तो वह अपने दायित्वों पर खरी नहीं उतरती है.

एम जे अकबर

दो साल देर से शुरू हुई 21वीं सदी

वर्ष 2002 में बीसवीं सदी का अंत उस वक़्त हुआ, जब गोधरा में दंगे शुरू हुए. यह हिचकोलों से भरा युग था, जिसने समाज को बर्बाद किया और मुल्क के टुकड़े-टुकड़े कर दिए. वह भी उस समय, जब हमारा यक़ीन हमारी पहचान और राजनीति का अहम हिस्सा बना. यदि जिन्ना ने लोगों को बांटने के लिए इस्लाम के शाब्दिक आडंबरों का सहारा लिया तो गांधी ने जोड़ने के लिए रामराज्य की परिकल्पना का इस्तेमाल किया. दोनों ने अपने पीछे अधूरे सपनों की एक विरासत छोड़ी, जिसे इतिहास को तय करना था कि कामयाब होने के लिए कौन सी विरासत बेहतर थी. जिन्ना का पाकिस्तान मज़हबी शासन की तरफ़ गया, जहां गृहयुद्ध और घातक आतंकवाद को हवा मिली. गांधी का भारत भले ही नेहरू की क़ाबिल गिरफ्त में रहा, लेकिन यहां सांप्रदायिकता पनपी और यही भारत के भाग्य की सबसे बड़ी अड़चन बनी.

1980 के दशक में शाहबानो प्रकरण और राम मंदिर आंदोलन की कहानी जुनून की हद तक भरोसे का निर्णायक पल ही थी. बाबरी का अहमदाबाद से जुड़ाव गोधरा के ज़रिए हुआ, लेकिन 2002 में यह जटिल मुद्दा बन गया. एक ज्वालामुखी के अंदर जितना लावा जमा था, वह सब बाहर निकल आया. 2002 के बाद यह साबित हुआ कि बहुत से भारतीय सामाजिक और आर्थिक बदलाव की बयार से दरकिनार कर दिए गए थे. कांग्रेस पार्टी ने इस बात को विचारधारा के बजाय सहज तौर पर समझा. इस दौरान विचारधारा का वजूद पूरे परिदृश्य से ग़ायब था. साथ ही अमेरिकी एवं भारतीय आर्थिक मदद से चलने वाले कार्यक्रमों में किसी को भी बाधक बनने की इजाज़त नहीं दी गई. इन दिनों चुनावी क्षेत्रों में मतदान की प्रक्रिया सही ढर्रे पर थी. भाजपा उन्हीं जगहों पर फली-फूली, जहां उसके क्षेत्रीय नेता लोगों के गुस्से को भुनाने में सफल रहे. ख़ासतौर पर नरेंद्र मोदी ने इन दोनों मसलों को भुनाया, लेकिन अगले चुनाव में उन्हें यह एहसास हो जाएगा कि उन्हें जीवन देने वाली एक नदी सूख गई है. यहां तक कि पिछले आठ सालों से हो रही हिंसा, जो नक्सलवादियों द्वारा ज्यादा की जा रही है, की वजह भूख है, न कि विचारधारा में इन लोगों का विश्वास.

21वीं सदी के पहले दशक का सही कारोबार बिज़नेस रहा है. यह उचित और दुर्भाग्यपूर्ण दोनों था. यही वजह है कि उच्चतम न्यायालय में इस दशक के आख़िर में भी गैस विवाद ने अपना दबदबा क़ायम रखा. विवाद का यह मसला हमारे समय के बड़े व्यवसायी बंधुओं मुकेश और अनिल अंबानी के बीच हुआ. पिछले छह वर्षों में किसी राजनीतिक संघर्ष की अपेक्षा इनके विवादों ने ही अधिक सुर्ख़ियां बटोरीं. हमें शुरू से यह बताया जाता है कि ख़ून का रिश्ता सबसे मज़बूत होता है. लेकिन, अक्सर पैसे का रिश्ता ख़ून से क्यों बड़ा हो जाता है? उत्तराधिकार के लिए दो मध्ययुगीन मानदंड हमारे सामने हैं. मुग़लों ने ज़िंदगी और मौत का फ़ैसला जंग के मैदान में चुना. अंग्रेज़ों ने इसके लिए बड़ों को अधिक लायक़ माना, शायद ख़ुद की चोट से

सीख लेते हुए अपनी श्रेष्ठता साबित करने के लिए. जहां बड़े बेटे को राज्य का उत्तराधिकारी बनाया जाता है और छोटे बेटे के हिस्से में आता है पी जी वुडहाउस की लिखी किताबें. समान अधिकारवादी युग में दोनों ही पैमाने क़बूलने लायक़ नहीं हैं, लेकिन हमारे देश में अभी भी फ़ायदा बड़े भाई को ही होता है. यही वजह है कि मुकेश अंबानी को धीरूभाई अंबानी के साम्राज्य का लगभग तीन-चौथाई हिस्सा हासिल हुआ और अनिल ने इस तरह की ग़ैर बराबरी का समझौता क़बूल किया.

लेकिन यह भी है कि हरेक साम्राज्य, चाहे वह राजनीतिक हो या व्यवसायिक, के वारिस का कर्तव्य है कि वह इस सौहार्द को बनाए रखे. यह उसकी सार्वजनिक ज़िम्मेदारी भी है. बिज़नेसमैन को अक्सर दिग्गज या नया मुग़ल कहा जाता है, लेकिन इससे उन्हें मुग़लों जैसा बर्ताव करने का लाइसेंस नहीं मिल जाता है कि वह अपने छोटे भाइयों की हत्या कर अपने साम्राज्य को मज़बूत कर सकें.

यह दोनों के बीच एक उल्लेखनीय अंतर है, जिसे भारतीय निजी क्षेत्र में वारिस के हक़दार दो शक्तिशाली भाइयों की जंग कहना ज़्यादा उचित हो सकता है. कुछ मर्यादाएं मुझे एक जोड़ीदार भाइयों का नाम लेने से रोक रही हैं. आपसी खींचतान में इन दोनों ने अपना सम्मान गंवा दिया है. बात जब अरबों से परे की हो तो बैंक बैलेंस की तुलना करना कोई मसला नहीं रह जाता है. लेकिन यदि अंबानी बंधुओं के पास दौलत की ताक़त है तो दूसरे के पास ताक़त की दौलत है. सभी चारों एक बीज को पौधे में विकसित करने की विलक्षण प्रतिभा के धनी हैं. उसके बाद वे इन पौधों को बगीचे में तब्दील करते हैं. अंबानी बंधु एक अंतरराष्ट्रीय हस्ती हैं तो दूसरे बंधु भी कम नहीं हैं. एक शहर के अहम अख़बारों और मीडिया माध्यमों को अपने क़ाबू में रखता है, जिससे वह बड़ी हस्ती बन जाता है. इन भाइयों को विरासत में जीन तो मिले, लेकिन वह ख़ास मिजाज़ नहीं. दोनों परिवारों में मतभेद थे. यह मतभेद था बेनामी वारिसों का. मानवीय कमज़ोरी के सामने हर कोई लाचार होता है, लेकिन इसने एक ढांचा प्रस्तावित करते हुए एक राज्य को साम्राज्य में तब्दील किया. ज़रा सोचिए, इस आर्थिक दुनिया में बिना महाभारत के दोनों में से किस अंबानी का विकास होगा.

सौभाग्य और दुर्भाग्य में पैसे का अंतर नहीं है, लेकिन परिवार की क़ीमत उसमें निहित शांति से आंकी जाती है. उच्चतम न्यायालय की भूमिका इस वक़्त इज़रायली शासक सोलोमन जैसी है, जो किसी भी तरह की भावुकता से परे है. उच्चतम न्यायालय इस मामले को मां के लिए नहीं छोड़ सकता, क्योंकि सुप्रीम कोर्ट ख़ुद भारतीय न्याय व्यवस्था की मां है, जिसके सामने आख़िरी गुहार लगाई जाती है. न्याय की यह देवी महज़ योग्यता, तरजीह और सिद्धांतों के आधार पर ही आधारित होगी और उसका फ़ैसला निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्रों के लिए मापदंड स्थापित करेगा. यदि भारत का भाग्य उसकी अर्थव्यवस्था में निहित है, यदि भारत को अपने पड़ोसियों से ऊपर एक विशिष्ट क्षितिज के लिए उड़ान भरना है, तो बिज़नेस में हमारे विश्वास की नैतिक आवाज़ उच्चतम न्यायालय की आवाज़ होगी.

feedback@chauthiduniya.com

रवि किशोर

तेलंगाना की नाकामयाबी

गृहमंत्री पी चिदंबरम ने बीती 9 दिसंबर को एक अलग तेलंगाना राज्य के गठन की मांग पर सरकार की स्वीकृति की घोषणा की थी. इस घोषणा ने राजनीतिक भूचाल ही खड़ा कर दिया. राज्य को बांटने के मुद्दे पर विभिन्न राजनीतिक दलों से जुड़े विधायकों ने विरोध में सामूहिक तौर पर पद से त्यागपत्र दे दिया. इस विरोध का परिणाम यह हुआ कि सरकार इस मुद्दे पर पीछे हट गई. 23 दिसंबर, 2009 को सरकार ने यह घोषणा कर दी कि तेलंगाना का मसला अनिश्चित समय तक के लिए टाल दिया गया है. सरकार की ओर से यह दलील दी गई कि इस मसले पर नए सिरे से विचार विमर्श की ज़रूरत है. गृहमंत्री का बयान था कि आंध्र प्रदेश में स्थिति काफ़ी बदल चुकी है. इस मुद्दे पर राजनीतिक दलों के बीच व्यापक मतभेद हैं, इसलिए राज्य के विभिन्न राजनीतिक दलों और संगठनों से व्यापक विचार विमर्श की ज़रूरत है. भारत सरकार इस प्रक्रिया में संबंधित पक्षों को शामिल करने के लिए ज़रूरी क़दम उठा रही है.

केंद्र सरकार द्वारा इस तरह पलटी मारने से यह बात एक बार फिर से सामने आई कि कुछ भी करने से पहले उसने कोई होमवर्क नहीं किया और घोषणा करने में जल्दबाजी दिखाई. संप्रग नेतृत्व और केंद्र सरकार किस बात से प्रेरित होकर तेलंगाना को अलग राज्य बनाने की प्रक्रिया शुरू करने की घोषणा को उद्यत हुए, यह बात समझ से परे है. नौ दिसंबर 2009 को गृहमंत्री द्वारा घोषणा के पूर्व इस पर विचार विमर्श क्यों नहीं किया गया. संभव है कि कांग्रेस इस घोषणा को राजनीतिक फ़ायदे की बात मानकर चल रही हो और यह भी मानकर चल रही हो कि इससे उसे तेलंगाना राष्ट्रीय समिति एवं उसके प्रमुख के चंद्रशेखर राव पर बढ़त हासिल हो जाएगी तथा वाई एस राजशेखर रेड्डी की असमय मौत से जो शून्य पैदा हुआ, उसकी भी भरपाई होगी. लेकिन इस पूरे प्रकरण में जिस तरह से कांग्रेस पार्टी और केंद्र सरकार ने भूमिका निभाई, उसने उल्टा असर किया और वह बचाव की मुद्रा में आ गई. राज्य में कांग्रेस एक विभाजित घर के जैसी हो गई है.

तेलंगाना मूल रूप से हैदराबाद रियासत का हिस्सा था. 1949 तक यह प्रिंसले के अधीन रहा. इस राज्य का आंध्र राज्य में विलय हो गया, जो थोड़े ही दिनों बाद आंध्र प्रदेश बन गया. हैदराबाद उस समय मुस्लिम रियासत था, लेकिन कई दशकों बाद यह पूरी तरह बदल चुका है. यह अब ज़्यादा धर्मनिरपेक्ष है और सूचना प्रौद्योगिकी एवं सॉफ्टवेयर विकास के लिहाज़ से विश्व के प्रमुख केंद्र के तौर पर विकसित हो चुका है. ऐतिहासिक नज़रिए से देखें तो भारतीय संविधान के अनुच्छेद 3 के अंतर्गत दिए गए प्रावधान के अधीन पिछले 50 वर्षों में कम से कम दर्ज़न भर राज्यों का गठन किया जा चुका है. इस प्रावधान के मुताबिक़ संसद को किसी भी राज्य की भौगोलिक सीमा में परिवर्तन का अधिकार है, अगर उसे लगता है कि इसकी मांग लोकतांत्रिक तरीक़े से की जा रही है और बड़े पैमाने पर की जा रही है. अलग तेलंगाना राज्य की एक सूत्री मांग करने वाली पार्टी तेलंगाना प्रजा समिति (टीपीएस) को पूरे क्षेत्र में लोकप्रियता हासिल हो गई और इस प्रकार उसने 1971 में संपन्न लोकसभा चुनाव में अपने लिए चुनावी समर्थन पक्का कर लिया. इस मुहिम को अंजाम देने वाली टीपीएस ने भारी जनादेश सुनिश्चित कर लिया. 14 में से 11 सीटें उसने अपनी झोली में कर लीं. तेलंगाना के छात्रों और युवकों ने भारी क़ीमत चुकाकर टीपीएस की जीत को सुनिश्चित किया. वे पूरे साल तक तेलंगाना में विरोध प्रदर्शन करते रहे.

इंदिरा गांधी को इन दोनों आंदोलनों की चुनौतियों का सामना करना पड़ा, लेकिन इसे नियंत्रित कर पाने में वह नाकामयाब रहीं. हालांकि 1969-70 में जय तेलंगाना आंदोलन (जेटीएम) का आक्रामक दमन उन्होंने सुनिश्चित कर लिया, लेकिन लोगों की लोकतांत्रिक आकांक्षाओं को वह चुनाव में नियंत्रित नहीं कर सकीं. लोकतांत्रिक विरोध का शांतिपूर्ण जवाब दे पाने में वह नाकामयाब रहीं. उन्हें केवल आंदोलन की लोकतांत्रिक भावना को बाहर लाने के लिए ग़ैर लोकतांत्रिक और अनैतिक उपायों का सहारा लेना चाहिए था. निश्चित तौर पर जेटीएम के नेता और समर्थक इंदिरा गांधी के नेतृत्व वाली सरकार के दबाव को झेलने की रणनीति में नाकाम रहे तथा शर्मनाक तरीक़े से समर्पण की मुद्रा में आ गए. चेन्ना रेड्डी प्रधानमंत्री के दबाव और समर्थन में आ गए. तात्कालिक फ़ायदे के लिए टीपीएस के सभी सांसद इंदिरा गांधी के शरणागत हो गए और आंदोलन हमेशा के लिए ख़त्म हो गया.

हालांकि जय तेलंगाना आंदोलन हमेशा से एक लोकतांत्रिक आंदोलन था. लोकप्रिय जनादेश इस बात का सबूत है. लेकिन केंद्रीय नेतृत्व की भूमिका संदिग्ध थी. उसने समझौते के जो प्रस्ताव रखे, वे अलोकतांत्रिक थे. तेलंगाना के विलय के लिए जिस तथाकथित भद्र समझौते की पेशकश की गई, वह लोगों की आकांक्षाओं को कमज़ोर करने के लिए था. बहरहाल, एक अलग राज्य तेलंगाना बनाने का आंदोलन ठंडा नहीं पड़ा. इस मुहिम को तेलंगाना राष्ट्रीय समिति के के चंद्रशेखर राव के रूप में एक नया नेता मिला, जिन्होंने अकेले अपने बूते ही तेलंगाना के लोगों के लिए अलग राज्य के सपनों और आकांक्षाओं को पूरा करने का बीड़ा उठाया. तेलंगाना का इलाक़ा पूरी तरह उपेक्षित है और यहां बाहरी लोगों का दबदबा है.

आइए ज़रा अतीत की ओर झांकें. 1956 में गठित राज्य पुनर्गठन आयोग भारत के राज्यों और संघ शासित प्रदेशों के प्रशासन में मील का पत्थर माना जाता है. यह अधिनियम भाषा एवं अर्थ बाधाओं के आधार पर नए राज्यों के गठन के लिए उत्तरदायी था. ए, बी, सी और डी श्रेणी के राज्यों के गठन के लिए भारतीय संविधान में संशोधन भी किए गए. दिसंबर 1953 में स्वतंत्र भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने राज्य पुनर्गठन आयोग को भाषा के आधार पर राज्यों एवं संघ शासित प्रदेशों के गठन के लिए नामित किया, जो अंततः 1956 में राज्यों का पुनर्गठन अधिनियम में तब्दील हो गया. राज्य पुनर्गठन

अधिनियम एक नवंबर 1956 को अस्तित्व में आया. हालांकि भारतीय राज्यों की सीमाओं में अतिरिक्त परिवर्तन 1956 के बाद किया गया. 1947 में आज़ादी के बाद राज्यों की सीमाओं में सबसे व्यापक बदलाव अकेले राज्य पुनर्गठन अधिनियम 1956 से लाए गए. भारत में ब्रिटिश शासनकाल के दौरान प्रशासन के लिए शासित प्रदेशों का संगठन किसी भी तरह तर्कसंगत या व्यापक सिद्धांत पर आधारित नहीं था. जैसा कि 1918 के माउंट फोर्ड रिपोर्ट में ज़िक्र किया गया था, संगठन का आधार सैन्य या प्रशासनिक सुविधा था. ऐसा करते हुए प्रशासन से लोगों की नज़दीकी या फिर उनकी पसंदगी को ध्यान में नहीं रखा गया.

भाषाई आधार पर भारतीय प्रांतों के पुनर्गठन के इतिहास को 1858 से टटोल सकते हैं. ब्रिटिश पार्लियामेंट में जॉन ब्राइट ने कहा था कि भारत का भौगोलिक एवं भाषाई आधार पर पांच प्रशासनिक समूहों में क्षेत्रीय विभाजन होना चाहिए. वर्ष 1896 में बिहार में महेश नारायण ने एक प्रशासन के तहत लाने के लिए बंगाल के हिंदीभाषी इलाक़ों को अलग करने की मांग उठाई. 1905 में लार्ड कर्जन द्वारा बंगाल का विभाजन करने के बाद राष्ट्रवादी आंदोलन से जुड़े नेता भी भाषा के आधार पर राज्यों के निर्माण को महत्व देने लगे. वर्ष 1908 में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने रॉयल कमीशन के सम्मुख राज्यों का पुनर्गठन भाषा के आधार पर किए जाने की आवश्यकता जताई और बाद में वह इस सिद्धांत की वक़ालत करने वाले अगुवा नेता की भूमिका निभाते रहे. लोगों तक उनकी भाषा में बात पहुंचाने, प्रभावी होने और मक़सद को हासिल करने के उद्देश्य से दिसंबर 1920 में नागपुर में आयोजित अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में एडमिनिस्ट्रेटिव डिवीजन को भाषा के आधार पर गठित किया गया. राज्यों के पुनर्गठन के बारे में भारत सरकार की प्रस्तावना में कहा गया है-किसी क्षेत्र की भाषा और संस्कृति की निस्संदेह अपनी महत्ता है, क्योंकि वे उस क्षेत्र की सामान्य जीवन पद्धति का प्रतिनिधित्व करती हैं. राज्यों के पुनर्गठन के बारे में विचार करते हुए कुछ दूसरे महत्वपूर्ण तथ्य भी हैं, जो दिमाग़ में आते हैं. जिस बात पर विचार करना सबसे महत्वपूर्ण है, वह देश की एकता व सुरक्षा का संरक्षण और उसकी मज़बूती है. वित्तीय, आर्थिक और प्रशासनिक मामलों पर ग़ौर फरमाना भी उतना ही महत्वपूर्ण है. न सिर्फ़ राज्यों के लिहाज़ से, बल्कि पूरे राष्ट्र के लिहाज़ से.

अगर पहले से न भी हो तो स्वतंत्रता के बाद से क्षेत्रवाद भारतीय राजनीति की सबसे बड़ी ताक़त रही है. यह कई क्षेत्रीय राजनीतिक दलों, जो 1960 के बाद से ही कई राज्यों में सत्ता की कमान संभालते रहे हैं, का मुख्य आधार रही है और अभी भी है. भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व वाली राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन की सरकार, जो केंद्र में 1999 से लेकर 2004 तक सत्ता में रही, कई क्षेत्रीय दलों का गठबंधन थी. यह जानकर आपको हैरानी होगी कि क्षेत्रवाद कम्युनिस्ट आंदोलन का भी मुख्य आधार रहा है. आज प्रांतीय पूर्वाग्रह और राजनीतिक महत्वाकांक्षा को सभी पक्ष पुनर्जीवित कर रहे हैं. क्षुद्र राजनीतिक फ़ायदे के लिए दूसरों से जुड़ाव की जगह सभी अलगाव के प्रति चिंतित नज़र आते हैं.

पिछले दो दशकों में ऐसे क्षेत्रीय नेताओं का उत्थान हुआ है, जो केंद्र में सरकार के गठन में अपनी मनमानी चलाते रहे हैं. इसने नए राज्यों के गठन की मांग को गति प्रदान की है. राज ठाकरे जिस चिंगारी को हवा दे रहे हैं, उसमें या फिर बोडोलैंड और गोरखालैंड जैसे दूसरे आंदोलनों में यही परिलक्षित हो रहा है. ये ख़तरनाक संकेत हैं, जो देश की एकता और अखंडता को नष्ट कर सकते हैं. बहरहाल नए और छोटे राज्यों का गठन महज़ एक राजनीतिक मामला नहीं है. आज के बदले हुए सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिदृश्य में नए राज्यों के गठन को केवल भाषाई आधार पर नहीं देखा जाना चाहिए. इसका राष्ट्र की एकता और अखंडता पर व्यापक असर होता है. इसकी संपूर्ण प्रक्रिया प्रशासनिक नज़रिए से देखी जानी चाहिए और इसकी व्याख्या भी इस आधार पर ही की जानी चाहिए कि इससे क्षेत्रीय विकास एवं लोगों की ख़ुशहाली के रास्ते खुलेंगे.

(लेखक सुप्रीम कोर्ट के वकील हैं)

feedback@chauthiduniya.com

चौथी दुनिया की अलख

हिंदी के दैनिक और साप्ताहिक अख़बारों से अलग पहचान बनाकर चौथी दुनिया ने अलख जगाई है. इसके क्या कहने! सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सिनेजगत, साहित्य, विज्ञान, न्यायपालिका, चिकित्सा, व्यवसाय आदि सभी विषयों पर ध्यान दिया गया है. 14-20 दिसंबर 09 के अंक में प्रकाशित कवर स्टोरी-लिब्रहान कमीशन की रिपोर्ट: आरएसएस पर बैन क्यों नहीं? पाठकों को हक़ीक़त से रूबरू कराती है. दिल्ली का बाबू, भोपाल गैस त्रासदी, असम में क्षेत्रवाद, दलाई लामा, कार्टून कोना, शिक्षकों का सौतेलापन और अफ़ग़ान-पाकिस्तान नीति विषयक आलेख उल्लेखनीय हैं.

जसवंत सिंह जनमेजय, कटवारिया सराय, नई दिल्ली.

अख़बार समाज का आईना

देश और समाज की गतिविधियों पर नज़र रखने और आम जन के हितों की रक्षा में समाचारपत्रों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है. मीडिया अपना फ़र्ज़ किसी हद तक निभा रहा है. बाक़ी हर तंत्र ख़ुद में कहीं गुम है. इस संदर्भ में नागरिकों को भी सजग रहने की ज़रूरत है.

समीर सत्संगी, परमट, कानपुर, उत्तर प्रदेश.

प्रशंसनीय कार्टून

मेरी दुनिया के सभी कार्टून बहुत प्रशंसनीय हैं. धीर जी के कार्टून एक अलग अंदाज़ में अपनी बात कहते हैं.

महेश्वर पांडेय, मोतीहारी, बिहार.

कुंभ पर ज्ञानवर्द्धक जानकारी

साहित्य दुनिया पृष्ठ पर कुंभ नगर की चर्चा सीरीज़ बहुत बढ़िया है. दरअसल कुंभ मेलों की जानकारी हर किसी को इतनी गहराई तक नहीं होती है. कुंभ मेलों के ऊपर अरबों रुपये ख़र्च होते हैं, यह जानकर आश्चर्य हुआ.

सविता, दिलशाद गार्डन, नई दिल्ली.

शाबाश सिरसिया

राजस्थान के सिरसिया गांव के लोग अब आत्मनिर्भर हैं, यह जानकर अच्छा लगा. वे अपनी मेहनत के बलबूते तरक़्क़ी कर रहे हैं, यह एक प्रेरणाप्रद बात है. नरेगा में फेरबदल क्यों शीर्षक से प्रकाशित लेख भी गंभीर सवाल उठाता है. सरकारी योजनाएं शायद इसीलिए अपने उद्देश्यों में सफल नहीं हो पाती हैं.

चौधरी रामराज, गुड़गांव, हरियाणा.

वाकई नाइंसाफ़ी है

बैगा आदिवासियों के नाम पर मध्य प्रदेश में करोड़ों रुपये की लूट का समाचार पढ़कर बेहद दु:ख हुआ कि आज भी आदिवासी भुखमरी के शिकार हैं. लेख से पता चला कि आदिवासियों के विकास के लिए आवंटित सरकारी पैसे से विभागीय अधिकारियों-कर्मचारियों का विकास हो रहा है. पात्र वंचित हैं और अपात्र मज़े लूट रहे हैं.

रागिनी जायसवाल, साकेत, नई दिल्ली.

सरकार की लचर नीति

आतंकवाद, माओवाद और बढ़ती महंगाई से सरकार का खोखलापन साबित हो गया है. गन्ना किसान परेशान हैं. जनता महंगाई, बेरोज़गारी और अपराध से त्रस्त है. शासन से लोगों का भरोसा ख़त्म होता जा रहा है. सरकार की लचर नीति राष्ट्र के लिए घातक साबित हो रही है.

प्रदीप सिंह राठौर, मेडिकल कॉलेज, कानपुर, उत्तर प्रदेश.

मुस्लिम आरक्षण का सवाल

28 दिसंबर-03 जनवरी के अंक की कवर स्टोरी पढ़ी. वास्तव में रंगनाथ मिश्र कमीशन की रिपोर्ट अगर चौथी दुनिया में न छपती और लोकसभा-राज्यसभा में हंगामा न होता तो सरकार इसे पेश करने वाली नहीं थी. दरअसल, सरकार भी वही काम करती है, जिससे उसका अपना कोई फ़ायदा हो अथवा होने वाला हो. दलित मुस्लिमों-ईसाइयों को आरक्षण कब मिलेगा, यह एक अलग सवाल है, लेकिन इस मामले में सरकार की नीयत का ख़ुलासा हो गया.

नमिता सिंह, ई-मेल से.

पाठक अपने विचार और सुझाव हमें इस पते पर भेज सकते हैं-
संपादक, चौथी दुनिया, एफ-2, सेक्टर - 11
नोएडा (उत्तर प्रदेश) पिन-201301
ई-मेल पता : feedback@chauthiduniya.com

जब तोप मुक़ाबिल हो

संतोष भारतीय

समस्याओं को मत टालिए

कोई भी शासन करे, उसे समझ लेना चाहिए कि समस्याओं को टालना ख़तरनाक होता है. तेलंगाना एक ऐसी ही समस्या है. इससे पहले जब भाजपा ने छत्तीसगढ़, झारखंड और उत्तरांचल बनाए थे, तभी लगने लगा था कि राज्यों के बंटवारे की मांग उठेगी और मज़बूती से उठेगी. तेलंगाना के निर्माण का आश्वासन गृहमंत्री चिदंबरम ने चंद्रशेखर राव के आमरण अनशन के दबाव में दिया था, तब उन्हें नहीं लगा होगा कि आंध्र में बंटवारे के ख़िलाफ़ भी आंदोलन खड़ा हो जाएगा. लेकिन चिदंबरम या सरकार यह तो समझ ही रही होगी कि उत्तर प्रदेश और बंगाल को बांटने की मांग भी उठ खड़ी होगी. अब सरकार परेशानी में है, पर यह परेशानी उसकी अपनी समझ के कारण पैदा हुई है.

छोटे राज्यों के निर्माण के पीछे का मुख्य तर्क है कि इसमें राज्य का विकास होगा और राज्य में भूख, बीमारी में कमी आएगी और रोज़गार के अवसर बढ़ेंगे. हरियाणा ने इस आशा को बढ़ाया भी. वहां का शासन ज़्यादा सक्षम हुआ, प्रशासन ने कार्यक्रम पूरे करने में ताक़त लगाई, लेकिन दूसरे प्रदेशों में यह काम नहीं हो पाया. झारखंड इसका जीवित उदाहरण है, जहां देश में सबसे ज़्यादा अकूत प्राकृतिक संपदा है, जहां के प्राकृतिक संसाधनों को बाहर ले जाकर हवाई जहाज से लेकर परमाणु ईंधन तक बनाया जा रहा है, लेकिन झारखंड में रहने वालों के पास न घर है और न रोटी. अब तो यहां की लड़कियां देश के देह बाज़ारों में बड़ी संख्या में दिखाई दे रही हैं. ऐसा राजनीतिज्ञ तलाशना चिराग लेकर सुई तलाशने जैसा हो गया है, जो ईमानदार हो और जिसे सब ईमानदार मानते भी हों. उत्तराखंड और छत्तीसगढ़ भी विकसित नहीं हो पाए.

राज्य चाहे बड़े हों या छोटे, सवाल विकास की सही दिशा और उसकी गति का है. सही दिशा, सही प्राथमिकता और गति की रफ़्तार जब गड़बड़ाती है तो राज्य चाहे बड़ा हो या छोटा, न केवल परेशानी में पड़ता है, बल्कि लोगों की निराशा और गुस्से का शिकार भी हो जाता है. पर दुष्परिणाम यह होता है कि लोग दिग्भ्रमित हो जाते हैं. अभी झारखंड को याद कीजिए. 81 सदस्यीय विधानसभा में सबसे ज़्यादा सीटें भाजपा को मिलीं, लेकिन मिलीं केवल बीस. सरकार बनाने के लिए इकतालिस सीटें चाहिए. और अगर मान लें कि विधानसभा में केवल 41 सीटें ही होतीं, तो भी कोई दल सरकार नहीं बना पाता, क्योंकि बीस से ज़्यादा किसी को सीटें मिली ही नहीं. झारखंड में भूख है, पर विकास नहीं है. और वहां के मतदाता भी किसी एक को बहुमत देकर सरकार बनाने लायक नहीं समझते. परेशानी इससे बड़ी थी, कोई दो दल मिलकर भी वहां सरकार नहीं बना सकते थे. सरकार बनाने के लिए कम से कम तीन या ज़्यादा दलों का सहयोग मिलना ज़रूरी था. और झारखंड में यही हुआ. वहां चार दलों ने मिलकर राज्यपाल को 42 विधायकों के समर्थन की सूची सौंपी. केवल सरकार का बन जाना ही स्थायी सरकार की गारंटी नहीं है. देखने वाली बात तो यह होगी कि कौन सा दल कितने दिनों तक अलिखित विशेषाधिकार का इस्तेमाल नहीं करता है. किसी भी दल के तोलमोल की स्थिति में आते ही सरकार की परेशानी बढ़ना तय है.

सौ रुपये किलो दाल देश में कितने लोग खाते होंगे. चीनी कड़वी हो गई है, लाखों लोगों ने चाय पीना बंद कर दिया है. आटा, चावल एक साथ खाने वाले लोगों की संख्या कम हो रही है. मध्यम वर्ग के निचले तबके ने बाज़ार उठने के बाद बची या फेंकी हुई सब्जी खाना शुरू कर दिया है, क्योंकि सब्जी उनकी पहुंच में नहीं है.

क्या नए बनने वाले राज्यों का भविष्य भी झारखंड जैसा होगा? छत्तीसगढ़ और उत्तराखंड की हालत उतनी बुरी नहीं है, पर अच्छी भी नहीं है. और अब फ़िलहाल तेलंगाना, जिसने आंध्र में आम लोगों के आपस में लड़ने भिड़ने की ज़मीन तैयार कर दी है. हरित प्रदेश के लिए अजीत सिंह ने कमर कस ली है और स्वयं मायावती ने मुख्यमंत्री के नाते प्रधानमंत्री को पत्र लिख दिया है कि वे उत्तर प्रदेश का विभाजन कर बुंदेलखंड और पूर्वांचल राज्य बनाने का प्रस्ताव लाएं. गोरखालैंड को लेकर दार्जिलिंग गरम है. महाराष्ट्र को विभाजित कर विदर्भ राज्य बनाने की पुरानी मांग नए सिरे से उठ रही है.

क्या है इसका हल? क्या आंध्र में तेलंगाना की तरह जैसे लोग आमने सामने खड़े हो गए, वैसे हर उस प्रदेश में जहां विभाजन की मांग उठ रही है, लोग आमने सामने खड़े होंगे? आमने सामने खड़े होने के पीछे का मुख्य कारण है रोज़ी रोटी के बढ़ने वाले अवसर बनाम रोज़ी रोटी के घटने वाले अवसर. दोनों ही बातें भ्रम हैं. जब तक बुनियादी समस्याओं की प्राथमिकता नहीं बदलती, जब तक बड़ी आबादी को विकास की प्रक्रिया में हिस्सेदारी नहीं मिलती, तब तक कुछ भी हासिल नहीं होने वाला. अब तक सरकारें समस्या को टालने का या अनदेखा करने का काम करती आई हैं, पर अब समय आ गया है कि उन्हें टालें नहीं, उनके हल के लिए गंभीर कोशिश करें. गंभीर कोशिश की शुरुआत न करने का परिणाम देश के प्रमुख प्रांतों में लोगों की आपसी लड़ाई के रूप में सामने आ सकता है. सरकार महंगाई को लेकर ज़रा भी परेशान नहीं दिखाई देती. आज सरकार अगर इस समस्या को अनदेखा करती है तो कल सारा देश परेशान हो जाएगा और निराशा में अनहोनी करने लगेगा.

सौ रुपये किलो दाल देश में कितने लोग खाते होंगे. चीनी कड़वी हो गई है, लाखों लोगों ने चाय पीना बंद कर दिया है. आटा, चावल एक साथ खाने वाले लोगों की संख्या कम हो रही है. मध्यम वर्ग के निचले तबके ने बाज़ार उठने के बाद बची या फेंकी हुई सब्जी खाना शुरू कर दिया है, क्योंकि सब्जी उनकी पहुंच में नहीं है. इसका दूसरा परिणाम बीमारियों का बढ़ना है. बच्चों में कुपोषण बढ़ रहा है, नतीजे के तौर पर मौत की दर बढ़ रही है. यह सामान्य कहानी है, पर अगर मुस्लिम समाज और दलितों को लें तो आंखें और खुल जाती हैं. दोनों वर्गों के आर्थिक रूप से कमज़ोर तबके बेरोज़गारी और बीमारी के जाल में दिनोंदिन जकड़ते जा रहे हैं. सोचने पर दहशत लगती है कि यदि महंगाई से परेशान सारे लोग सड़क पर उतर आएं और लूटपाट करने लगें तो क्या होगा? क्या सरकार के पास इतनी पुलिस या फौज़ है, जो वह महंगाई से परेशान लोगों के गुस्से का सामना कर सके? हम किसानों के क़र्ज़ के जाल में जकड़ने के कारणों की तो बात ही नहीं करते.

आज वक़्त है कि सरकार सारे राजनैतिक दलों को इन सभी सवालों पर बुलाए और उनसे इन्हें हल करने में सहयोग मांगे. राजनैतिक दलों को भी चाहिए कि वह इन समस्याओं के हल के लिए ईमानदारी से सहयोग दें. पर पहल तो सरकार को ही करनी होगी, ईमानदार पहल. हर हालत में रोज़ी रोटी, महंगाई और भ्रष्टाचार का मुद्दा एजेंडे पर सबसे पहले रखना होगा. अगर इसमें थोड़ी भी चूक होती है तो हमें देश में आपसी झगड़ों, दंगों और लूटपाट के मंज़र देखने के लिए अपने आपको तैयार रखना होगा.

संपादक
editor.chauthiduniya.com

बीते साल से ख़ुश होने की वजह

डॉ. मोहम्मद मंज़ूर आलम

साल के अंत में जलसों की इन फ़ज़ाओं में जो ख़ुशी हमारे हिस्से आई है, कुछ वक़्त के लिए हमें उसका जश्न मनाना चाहिए. मसलन अल्पसंख्यक विरोधी हिंसा में पहले की अपेक्षा कमी आई है. लेकिन एक ऐसा मसला जो एक आदर्श स्थिति और राज्य का पहला दायित्व होना चाहिए, उसके लिए हमें जश्न क्यों मनाना चाहिए? क्या भारतीय राज्य अल्पसंख्यकों सहित अपने नागरिकों की सुरक्षा के लिए संवैधानिक तौर पर जवाबदेह नहीं है? अल्पसंख्यकों के ख़िलाफ़ बड़े पैमाने पर हिंसा न होने से ख़ुशी मनाने का कोई मतलब नहीं होना चाहिए. आख़िरकार हर रोज़ की हक़ीक़त ऐसी नहीं होती कि इस तरह ख़ुशियां मनाई जाएं. हालांकि यह भी एक तथ्य है कि अल्पसंख्यक विरोधी हिंसा हमेशा से आज़ाद भारत के राजनीतिक जीवन में स्थायी तत्व रहा है. यहां तक कि जब गलियों में लोगों की हत्याएं हो रही हैं, महिलाओं के साथ बलात्कार हो रहा है और राजनीतिक दल के गुंडे घरों में आग लगा रहे हैं तो राज्य हमेशा इसके प्रति एक अलग ही नज़रिया अपनाता है. हमें इसलिए ख़ुश होना चाहिए कि पिछले साल हमने ऐसे बहुत ही कम भयानक हादसे देखे. लेकिन, यदि मुस्लिम विरोधी या ईसाई विरोधी दंगे ज़्यादा नहीं हुए तो इसका यह मतलब कतई नहीं है कि दंगे हुए ही नहीं. हम महज़ तुलनात्मक अध्ययन ही कर रहे हैं कि वर्ष 2009 में हमें 1984 या 2002 जैसे दंगे देखने को नहीं मिले.

जिन लोगों के पास कुछ नहीं होता है, आम तौर पर उन्हें थोड़ा सा भी कुछ हासिल हो जाए तो वे ख़ुश हो जाते हैं. आख़िरकार भाजपा शासित कर्नाटक में मुस्लिम और ईसाई विरोधी दंगे हुए हैं. उड़ीसा में हुए दंगे की यादें अभी भी लोगों के जेहन में ताज़ा हैं. मध्य प्रदेश, झारखंड और उत्तराखंड में भी अल्पसंख्यक विरोधी छिटपुट हिंसा हुई. फिर भी हमें ख़ुश होना चाहिए. आख़िरकार पिछले साल बहुत ही कम मुस्लिम और ईसाई मारे गए. यह शुक्र है कि हमारे सिख भाइयों को 1984 की बुरी यादों का फिर से सामना नहीं करना पड़ा. क्या हमारे लिए ख़ुश होने के लिए इतना काफ़ी नहीं है? हमें इन मामलों में सरकार से और ज़्यादा अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए. भारतीय संविधान के मुताबिक़ राज्य को सुरक्षा मुहैया कराने का अधिकार है, इसलिए हमें कम की भी उम्मीद नहीं करनी चाहिए. सरकार को संविधान से तमाम अधिकार मिले हुए हैं, लेकिन जब अल्पसंख्यकों की सुरक्षा का मसला आता है तो वह अपने दायित्वों पर खरी नहीं उतरती है. हालांकि जिन राज्यों में क्षेत्रीय पार्टियां सत्ता में हैं, वे राज्य अपवाद हैं. मसलन केरल, पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश और बिहार. (यहां यह भी कहना ज़रूरी है कि इन पार्टियों ने मुसलमानों को शिक्षित नहीं किया अथवा रोज़गार मुहैया नहीं कराया, जिससे उनकी हालत में सुधार हो सके. जबकि राज्यों की संवैधानिक ज़िम्मेदारी होती है कि वह कमज़ोरों की सुरक्षा और उनकी हालत में सुधार के उपाय करें.)

कई सिख, ईसाई और मुसलमान कांग्रेस एवं भाजपा को एक ही थैली के चट्टे-बट्टे मानते हैं. हम में से कई इन दोनों दलों के बीच बारीक अंतर नहीं कर पाते हैं. यदि इन दोनों दलों को एक ही तराज़ू में रखा जा रहा है तो इसके लिए लोगों को क़सूरवार नहीं ठहराया जा सकता है. भारत के एक वरिष्ठ पत्रकार ने बताया कि भाजपा जो काम दिन के उजाले में करती है, वहीं काम कांग्रेस रात के अंधेरे में करती है. यदि इनकी कारगुज़ारियों का नतीजा एक ही नहीं होता, लेकिन समान तो ज़रूर होता है. दोनों ही मामलों में घाटे का सौदा हमेशा कमज़ोर को ही करना पड़ता है. तब यह है कि हमारे पास ख़ुद को दिलासा देने के लिए एक और वजह है. अभी हम लोग यूपीए सरकार के शासन में रह रहे हैं और ज़ाहिर तौर पर अपने कार्यों से यह एनडीए की तरह बुरी सरकार नहीं है. यह जानलेवा यात्राएं नहीं कर रही है. यह सिर्फ़ निष्क्रिय बनी रहकर अल्पसंख्यकों की हत्या की इजाज़त देती है. साल और दशक के आख़िरी दिनों में हमें कुछ नैतिक ज़िम्मेदारियों को ज़ाहिर तौर पर समझ लेना चाहिए. कम गुनाह, गुनाह नहीं करना और गुनाह करना क्या होता है? इसी बात को दूसरे शब्दों में कहें तो 6 दिसंबर का सबसे बड़ा गुनहगार कौन है, कल्याण सिंह-आडवाणी और उनके सहयोगी या नरसिम्हाराव-चव्हाण सहित कांग्रेस? एक बार फिर इसी बात को दूसरे अर्थों में कहें तो हमें किस पर भरोसा करना चाहिए, कांग्रेस की अगुवाई वाली यूपीए अथवा भाजपा की अगुवाई वाली एनडीए पर? बीते साल के लिए यह एक विचार है. इस पर

अपने आदिवासी भाइयों-बहनों के लिए भी हमें सोचना चाहिए, जो भूखे मरने के लिए मजबूर हैं, क्योंकि सरकार और उसके सहयोगियों द्वारा उनकी ज़मीनें छीनी जा रही हैं. हर रोज़ पुलिस आदिवासी पुरुषों की हत्या और महिलाओं के साथ बलात्कार कर रही है. अब यही सरकार नक्सलवाद के नाम पर उनकी सामूहिक हत्या करना चाहती है.

सोचने की ज़रूरत है.

मौजूदा साल में इस मसले पर मैं आपके विचारों को जानना चाहता हूं. इस दरम्यान हमें यह यक़ीन करने के लिए ख़ुद को समझाना है कि हमारे पास इसका कोई चारा है. चाहे वह विकल्प शैतान और गहरे सागर के बीच भले ही हो. एक दूसरे नज़रिए से भी हम इन बातों पर विचार कर सकते हैं कि पिछले साल जो हमने बोया है, इस साल उसी को काटेंगे. उदाहरण के तौर पर

हम ईरान को अपना दोस्त बताते हैं, जबकि अमेरिकी मित्र के तौर पर हम लगातार उसके ख़िलाफ़ वोटिंग कर रहे हैं. अभी हाल ही में कुछ सप्ताह पहले हमने एक और वोट ईरान के ख़िलाफ़ डाला है. हमने ख़ुद को हमेशा यह एहसास दिलाया कि भारत-अमेरिकी आण्विक समझौते के कई पेंच हैं. हमने अपने लोगों को यह नहीं बताया कि इनमें एक ईरान के ख़िलाफ़ वोट करना है. ख़ैर कोई बात नहीं. हमें अपने ख़ुशमिजाज़ी माहौल को बर्बाद करने की ज़रूरत नहीं है. जयराम रमेश आपको बताएंगे कि जब सरकार अमेरिका और दूसरे बड़े देशों के साथ मशविरा करने पर सहमत हो गई तो हमारी संप्रभुता के साथ समझौता नहीं किया गया. अमेरिकियों ने यह घोषणा की कि कोपेनहेगन में जो प्रतिबद्धता हमने ज़ाहिर की, उसे हम पर लागू करने का अधिकार अमेरिकियों के पास ही रहेगा. क्या हमें यह पता चला कि हमने उस सर्द मुल्क में किस चीज़ पर दस्तख़त किए? संप्रभुता पर? कौन संप्रभुता? किसकी संप्रभुता पर?

और, इसके अलावा पिछले साल हमने क्या हासिल किया? इसमें कोई शक़ नहीं कि हमें लिब्रहान आयोग की रिपोर्ट मिली. हमें इस बात से ज़्यादा परेशान नहीं होना चाहिए कि यह रिपोर्ट उस वक़्त आई, जब इसके कई गुनहगार गुज़र चुके हैं. इसके अलावा हमारी तमाम ज़िंदगी में बाक़ी गुनहगारों के ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई होगी, इसकी उम्मीद भी नहीं करनी चाहिए. या फिर गुनहगारों के जीवनकाल में कभी उनके ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई होगी, इसकी भी उम्मीद नहीं की जानी चाहिए. अपने आदिवासी भाइयों-बहनों के लिए भी हमें सोचना चाहिए, जो भूखे मरने के लिए मजबूर हैं, क्योंकि सरकार और उसके सहयोगियों द्वारा उनकी ज़मीनें छीनी जा रही हैं. हर रोज़ पुलिस आदिवासी पुरुषों की हत्या और महिलाओं के साथ बलात्कार कर रही है. अब यही सरकार नक्सलवाद के नाम पर उनकी सामूहिक हत्या करना चाहती है.

इसलिए अब आप क्या कहते हैं? क्या अभी भी उत्सव मनाने के लिए कोई वजह बची हुई है? आसमान छूती महंगाई का जश्न मनाना चाहिए? या बढ़ती बेरोज़गारी का? आख़िर में, जलसों में शरीक होने के लिए मैं ज़्यादा आश्वस्त नहीं हूं. यदि इन जलसों के बारे में आप अपने विचारों से मुझे थोड़ा पहले वाक़िफ़ करा देते हैं तो मुझे ख़ुशी होगी.

(लेखक ऑल इंडिया मिल्ली काउंसिल के महासचिव हैं)

feedback@chauthiduniya.com

मां-बाप जिंदा न हों तो अनाथाश्रम में बच्चों के आश्रय लेने की बात समझ में आती है. लेकिन कई देशों में बच्चे गरीबी की वजह से अनाथाश्रम में रहने को मजबूर है.

ख़ुफ़िया एजेंसियों के सीक्रेट

जब राष्ट्रपति ने दिया अपहरणकर्ताओं का साथ!

इज़रायल का ख़ुफ़िया आतंक

युगांडा के राष्ट्रपति ईदी अमीन

योनातन नेतान्यूह (इज़रायली मिशन प्रमुख)

इंटेब्बे एयरपोर्ट पर सी-130 हरक्यूलस विमान. (इनसेट) में दीवार पर लगी गोलियों के निशान.

ता रीख़ 27 जून 1976 और एयर फ्रांस की फ्लाइट नंबर 139. बारह बजकर तीस मिनट पर यह विमान 248 यात्रियों एवं 12 क्रू मेंबर्स को लेकर एथेंस से पेरिस के लिए रवाना हुआ, लेकिन उड़ान भरने के कुछ समय बाद ही एक सनसनीखेज़ ख़बर आई. यह ख़बर थी विमान के अपहरण की. उसके बाद तो पूरे विमान में अफरातफरी मच गई. अपहरण की इतनी बड़ी वारदात हो चुकी थी, लेकिन किसी को अभी तक यह समझ में नहीं आ रहा था कि एयर फ्रांस के विमान का अपहरण आख़िर क्यों किया गया है? इसका पता भी उस वक़्त चल गया, जब अपहरणकर्ताओं ने अपनी मांग रखी. उनकी मांग थी कि इज़रायल अपनी क़ैद से 40 फिलिस्तीनियों को आज़ाद करे. इसके अलावा 13 अन्य लोग जो केन्या, फ्रांस, स्विटजरलैंड और पश्चिमी जर्मनी में क़ैद हैं, उन्हें भी जल्द से जल्द मुक्त किया जाए. यदि ऐसा नहीं किया गया तो वे एक जुलाई 1976 को सभी बंधकों को मौत के घाट उतार देंगे. यही धमकी दी थी उन अपहरणकर्ताओं ने और इसके लिए वे पूरी तरह तैयार होकर भी आए थे. अपनी इस योजना के तहत उन्होंने सबसे पहले बंधकों को दो समूहों में बांट दिया. पहला समूह उन लोगों को था, जो यहूदी थे और दूसरा समूह बाक़ी सभी बंधकों का था. अब तक यह ज़ाहिर हो चुका था कि अपहरणकर्ता कौन थे और उनके मंसूबे क्या थे?

फिलीस्तीन और इज़रायल के बीच की आपसी जंग तो जगज़ाहिर थी और उनके बीच शह और मात का खेल हमेशा चलता रहा है. इस खेल में कभी फिलिस्तीनी तो कभी इज़रायली भारी पड़ता. मतलब यह कि अपहरणकर्ता कौन थे, इसका अंदाज़ा लगाना अब कतई मुश्किल नहीं था. इस वारदात को अंजाम दिया था फिलिस्तीनी संगठन ने और इस फिलिस्तीनी शख्स का ताल्लुक पॉपुलर फ्रंट फॉर द लिबरेशन ऑफ़ फिलीस्तीन से था. इस संगठन के दो शख्स विमान अपहरण की इस साज़िश में शामिल थे. लेकिन, हम आपको बता दें कि जब विमान का अपहरण हुआ था तो उस वक़्त चार लोगों ने अपहरण की इस साज़िश को अंजाम दिया था. मतलब यह कि दो लोगों की पहचान अभी भी छिपी हुई थी. उन दोनों की बातचीत से साफ़ ज़ाहिर हो रहा था कि उनकी आपसी बातचीत की भाषा जर्मन है यानी लोगों का संदेह उनके जर्मन नागरिक होने पर हुआ. लेकिन जो बात लोगों को अभी तक परेशान कर रही थी, वह यह कि आख़िर कोई जर्मन इस अपहरण की साज़िश को अंजाम क्यों दे सकता है? किसी फिलिस्तीनी के शामिल होने की बात उनकी समझ में आ रही थी. जब अपहरणकर्ताओं ने यात्रियों को यहूदी और ग़ैर यहूदी जैसे दो समूहों में बांटा, तभी उनकी समझ में आ गया था कि यह किसी फिलिस्तीनी संगठन की साज़िश है, जो इज़रायल से अपना बदला लेना चाहता है.

उक्त दोनों जर्मन नागरिकों के नाम थे, विल्फ्रेड बोज़ एवं ब्रिगिट कोल्हमन. इनके कारनामे से ही ज़ाहिर हो जाता है कि इन्होंने क्यों इस मिशन में फिलिस्तीनियों का साथ दिया. हम आपको बता दें कि इनका संबंध जर्मन संगठन रिवॉल्यूशनरी सेल से था और इस अपहरण की वारदात की अगुवाई करने वाला शख्स भी जर्मन नागरिक विल्फ्रेड बोज़ ही था. इसी के इशारे पर विमान को लीबिया के बेंग़ाज़ी हवाई अड्डे पर ईंधन भरने के लिए उतारा गया. तक़रीबन सात घंटे तक विमान इस हवाई अड्डे पर डेरा डाले रहा. उसके बाद एयर फ्रांस के इस विमान ने लीबिया से उड़ान भरी और क़रीब सवा तीन बजे यह युगांडा पहुंच गया. विमान को इंटेब्बे हवाई अड्डे पर उतारा गया. यहां अपहरणकर्ताओं के चार अन्य साथी जो पहले से ही उनका इंतज़ार कर रहे थे, उनके साथ हो लिए. लेकिन यहां सोचने वाली बात यह है कि आख़िर अपहरणकर्ताओं ने युगांडा का ही रुख़ क्यों किया? यदि आपसे भी यह सवाल पूछा जाए तो मुमकिन है कि आपका जवाब यही हो कि उनके चार साथी पहले से यहां इंतज़ार कर रहे थे इसीलिए. लेकिन, हक़ीक़त तो कुछ और ही थी. दरअसल अपहरणकर्ताओं को एक ऐसी शख्सियत से शह मिल रही थी, जो एक देश का राष्ट्रपति था. यह बिल्कुल ही हैरान करने वाली बात थी, लेकिन थी सौ फ़ीसदी सच. यही वजह थी कि विमान को लीबिया में उतारने के बावजूद अपहरणकर्ता ख़ुद को महफ़ूज़ महसूस नहीं कर रहे थे. अपने मक़सद को अंजाम देने और ख़ुद की सही सलामती का पुख्ता इंतज़ाम वे पहले ही कर चुके थे. यही वजह है कि उन्होंने लीबिया को अपना ठिकाना न बनाकर उसकी जगह युगांडा को चुना. आख़िर उनके सिर पर एक राष्ट्रपति का हाथ था. यह राष्ट्रपति कोई और नहीं, बल्कि युगांडा के राष्ट्रपति ईदी अमीन थे, जिनकी फिलीस्तीन समर्थक सेना ने अपहरणकर्ताओं का भरपूर सहयोग किया. इस तरह विमान अपहरण की यह साज़िश काफ़ी उलझ कर रह गई थी. विमान अपहरण का मामला एक था और इसमें शामिल थे तीन मुल्क. जर्मनी रिवॉल्यूशनरी सेल के सदस्य नाज़ियों की हत्या का बदला इज़रायल से लेना चाहते थे. फिलिस्तीनियों की मंशा तो हमेशा से इज़रायल को नेस्तनाबूत करने की रही है और युगांडा के राष्ट्रपति इन दोनों को हर तरह से मदद कर रहे थे. इस दौरान एक बेहद ही चौंकाने वाला वाकया हुआ. अपहरणकर्ताओं ने 248 में से 143 यात्रियों को आज़ाद कर दिया, जबकि उनकी मांगें अभी भी नहीं मानी गई थीं. अभी भी उनके क़ब्ज़े में 105 लोग और थे, जिनमें 85 यहूदी थे तथा बाक़ी 20 ग़ैर यहूदी. हालांकि ग़ैर यहूदी बंधक और दूसरे लोग बग़ैर सभी यात्रियों के जाने को तैयार नहीं थे, लेकिन युगांडा के सैनिकों ने इंटेब्बे हवाई अड्डे पर मौजूद एयर फ्रांस के एक दूसरे विमान में उन्हें जबरन बैठा दिया.

इस तरह वह तारीख़ भी आ गई, जिसे अपहरणकर्ताओं द्वारा समय सीमा तय किया गया था यानी एक जुलाई. इस दिन इज़रायली सरकार ने अपहरणकर्ताओं से बातचीत की और डेड लाइन 4 जुलाई तक बढ़ाने को कहा. युगांडा के राष्ट्रपति ने भी अपहरणकर्ताओं से यही बात कही, जिसे मान लिया गया. लेकिन इज़रायली चालाकी और रणनीति से वाक़िफ़ होने के बावजूद अपहरणकर्ता एवं युगांडा के राष्ट्रपति यहीं पर मात खा गए. शायद वे इज़रायली सरकार और ख़ुफ़िया एजेंसी मोसाद के मंसूबों को भांप नहीं पाए. *(शेष अगले अंक में...)*

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

ज़रा हट के

एक लाख कीड़े-मकोड़े अंतरिक्ष पहुंचे

अब कीड़े-मकोड़े भी अंतरिक्ष की सैर करने लगे हैं. उन्हें अंतरिक्ष में भेजने के पीछे एक ख़ास मक़सद है. वह यह कि वैज्ञानिक उन पर शोध कर रहे हैं, जिसके नतीजे निश्चित तौर भविष्य में फ़ायदेमंद साबित होंगे. एटलांटिस अंतरिक्ष शटल ने फ्लोरिडा से अंतरिक्ष की उड़ान भरी, लेकिन यह कोई मामूली उड़ान नहीं थी. इसमें अंतरिक्ष यात्रियों के साथ-साथ सामान और कुछ ख़ास यात्री भी शामिल थे. ख़ास यात्री यानी एक लाख सूक्ष्म कीड़े-मकोड़े. इनका इस्तेमाल वैज्ञानिक प्रयोगों के लिए किया जाएगा. इन कीड़ों (केनोरहैबडाइटिस एलीगान्स) की लंबाई महज़ एक मिलीमीटर है, लेकिन आप इनकी लंबाई-चौड़ाई और आकार-प्रकार पर मत जाइए, क्योंकि अंतरिक्ष में आकार का फ़र्क़ नहीं पड़ता है. ग़ौरतलब है कि हमारे शरीर का 80 फ़ीसदी डीएनए बिना रीढ़ की हड्डी वाला है. मतलब यह कि ये उन कीड़े-मकोड़ों से मिलते-जुलते हैं, जो आमतौर पर कूड़ा-करकट खाते हुए आपके आसपास दिख जाते हैं. जापान और ब्रिटेन से आए इन ज़्यादातर कीड़ों पर अंतरिक्ष यात्रियों में मांसपेशियों को कमज़ोर करने वाली बीमारी मस्क्युलर एट्रोपी को रोकने के लिए परीक्षण किए जाएंगे. लंबे समय तक अंतरिक्ष में रहने वाले लोगों में मांसपेशियों की कमज़ोरी एक बड़ी समस्या है और आने वाले दिनों में जब लोग चांद व मंगल ग्रह पर रहने लगेंगे तो यह समस्या और विकट हो जाएगी. इन कीड़ों को 11 दिनों तक अंतरिक्ष में रखा जाएगा और वापस धरती पर लौटने के बाद शोध किया जाएगा कि इनके शरीर के प्रोटीन में किस तरह का असर हुआ है.

अब शाकाहारी मांस

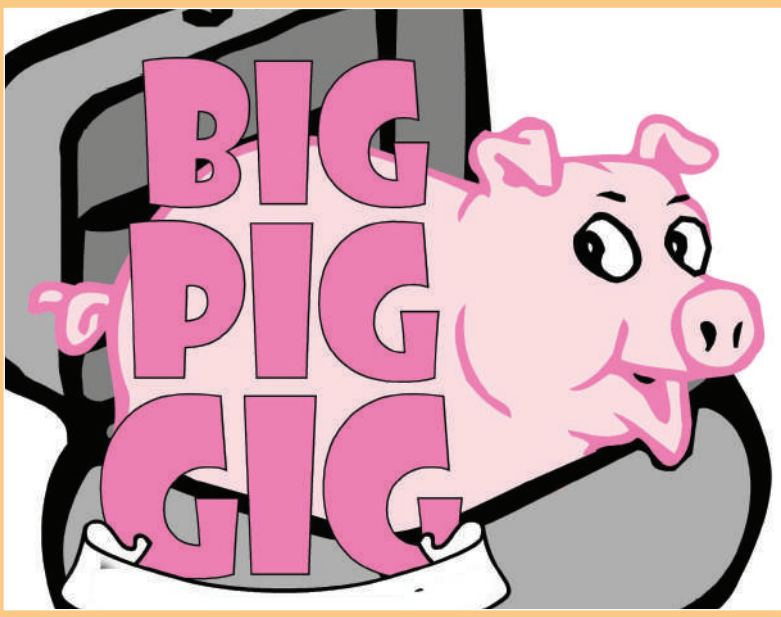

अगर आप सिर्फ़ जीव हत्या की वजह से मांस नहीं खाते हैं तो विज्ञान जल्द ही आपकी इस परेशानी को दूर करने वाला है. मतलब यह कि अब आपको शाकाहारी मांस खाने को मिलेगा. दरअसल, वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला में शाकाहारी मांस तैयार करने में कामयाब हो गए हैं. हालांकि उन्होंने इसका स्वाद नहीं चखा है. यह ख़बर उन लोगों के लिए बहुत महत्वपूर्ण है, जो मांस नहीं खाते हैं. यह इसलिए भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसका संबंध पशु हत्या, नैतिकता और ग्लोबल वॉर्मिंग जैसे अहम मसलों से जुड़ा हुआ है.

नीदरलैंड में वैज्ञानिकों की एक टीम ने सूअर का मांस लैब में तैयार किया है. इसे तैयार करने के लिए जिंदा सूअर की मांसपेशी से सेल्स लेकर उनका पेट्री डिश में विकास किया गया. इसके बाद उसे दूसरे एनिमल प्रॉडेक्ट्स के साथ रखा गया. यह देखा गया कि इससे सेल्स की तादाद में इज़ाफ़ा हुआ और मसल्स या मांसपेशी का टिश्यू बन गया. एंडहोवन यूनिवर्सिटी के शोधकर्ता मार्क पोस्ट के अनुसार, इस विधि से आप किसी जानवर का थोड़ा सा मांस लेकर कई गुना मांस तैयार कर सकते हैं.

वैज्ञानिक अब तक सूअर का गीला मांस ही बना पाए हैं और उसे बेहतर करने की कोशिश में लगे हैं. उनका कहना है कि अभी हम बेकार मसल टिशू ही बना पाए हैं. अगर शोध इसी तरह जारी रहा तो उम्मीद की जानी चाहिए कि पांच साल में प्रोसेस्ड फूड भी प्रयोगशाला में बनने लगेगा. वैसे इससे पहले न्यूयॉर्क में गोल्ड फिश की मसल से फिश फिलेट बनाया जा चुका है. इससे लैब मेड चिकन आदि बनने का रास्ता खुल गया था.

मां-बाप होने के बावजूद अनाथ

कितनी अजीब बात है कि विकासशील देशों में मां-बाप के होते हुए भी बच्चे अनाथ आश्रमों में रहने को मजबूर हैं. इतना ही नहीं, दिनोंदिन इनकी संख्या में इज़ाफ़ा होता जा रहा है. इसके पीछे मुख्य वजह ग़रीबी है. संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के मुताबिक़, लगभग 80 लाख बच्चे विभिन्न अनाथाश्रमों में रह रहे हैं. एक ख़ास बात सामने यह आई कि अनाथाश्रमों में बच्चों को छोड़ने की मुख्य वजह मां-बाप की मौत नहीं, बल्कि ग़रीबी रही.

सेव द चिल्ड्रेन नामक संस्था के मुताबिक़, इंडोनेशिया के 94 और घाना के 90 प्रतिशत बच्चे माता या पिता के जिंदा होने के बावजूद अनाथाश्रमों में रहने को मजबूर हैं. जबकि लीबिया और श्रीलंका में ऐसे बच्चों की संख्या 88 और 80 प्रतिशत है. रिपोर्ट की लेखिका एवं बाल सुरक्षा सलाहकार कोरिन्ना कास्की कहती हैं कि लोगों को यह भ्रम है कि जो बच्चे अनाथाश्रमों में रहते हैं, वे बिना मां-बाप के होते हैं, लेकिन यहां ज़्यादातर बच्चे ऐसे हैं, जिनके अभिभावक उनकी मूलभूत ज़रूरतों जैसे खाना, कपड़ा और शिक्षा आदि का ख़र्च न उठा सकने की वजह से उन्हें यहां छोड़ गए हैं. गरीब अभिभावकों को लगता है कि यहां उनके बच्चों का भविष्य बेहतर है. सेव द चिल्ड्रेन की राजदूत पॉल ओ ग्रेडी का कहना है कि माता-पिता के होते हुए भी उन्हें परिवार से अलग भेजना ग़लत है. मैं मानती हूं कि दुनिया भर में बच्चों को परिवारों के साथ रखे जाने का समर्थन होना चाहिए. रिपोर्ट में सरकार और वित्तीय संस्थानों सहित अनाथाश्रमों के लिए काम कर रही संस्थाओं से कहा गया है कि ऐसी योजनाओं को प्राथमिकता दी जाए, जिसमें ग़रीब बाल बच्चेदार परिवार की मदद हो सके. इसके साथ ही सरकारों से राष्ट्रीय और स्थानीय स्तर पर बच्चों की देखभाल कर रही संस्थाओं की सख्त निगरानी के लिए भी अपील की गई है.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा ने नई अफ़ग़ान-पाक नीति की घोषणा की है. कभी इराक दुनिया के लिए बड़ा ख़तरा था, अब पाकिस्तान को सबसे बड़ा ख़तरा बताया जा रहा है. नई अफ़ग़ान-पाक नीति को पहले से भी ज़्यादा ख़तरनाक बताया जा रहा है.

ज़रदारी की पकड़ से बाहर हुए परमाणु हथियार

अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा ने जैसे ही अफ़ग़ानिस्तान में आतंकवाद के ख़िलाफ़ अपनी नई नीति की घोषणा की, वैसे ही दुनिया के सबसे ख़तरनाक देश पाकिस्तान में हालात और भी ख़राब हो गए. पाकिस्तानी सेना व विपक्ष के दबाव में आकर पाकिस्तान के राष्ट्रपति आसिफ़ अली ज़रदारी को देश की परमाणु कमान प्रधानमंत्री यूसुफ़ रज़ा गिलानी को सौंपनी पड़ी. यह महज़ एक शुरुआत है. ज़रदारी ने यह क़दम भ्रष्टाचार के आरोपों के चलते संभवत: महाभियोग से बचने के लिए उठाया है. इस क़दम से उन्होंने सेना को संतुष्ट करने की कोशिश की है, जो उन्हें कमज़ोर करने के लिए तैयार बैठी है.

पिछले कुछ दिनों से कुछ राजनीतिक दल सेना के साथ मिलकर ज़रदारी को कमज़ोर करने की मुहिम चला रहे हैं. उनकी कोशिश ज़रदारी पर दबाव बनाकर उन्हें पद छोड़ने के लिए मजबूर कर देने और उनकी जगह पर किसी कठपुतली को राष्ट्रपति की कुर्सी पर बैठा देने की है. सेना का मानना है कि राष्ट्रपति ज़रदारी अमेरिका के कुछ ज़्यादा ही पक्षधर हैं. वह अफ़ग़ानिस्तान में अमेरिकी नीति, अफ़ग़ान सरकार और भारत के ख़िलाफ़ सेना के सख्त रवैए का समर्थन नहीं करते.

पाकिस्तान के नाज़ुक हालात

अमेरिका और ब्रिटेन समेत नाटो के अन्य देश पाकिस्तान पर दबाव डाल रहे हैं कि पाकिस्तानी सेना को ओसामा बिन लादेन समेत तालिबानी नेतृत्व के सफ़ाए पर और अधिक ज़ोर देना चाहिए. ब्रिटिश प्रधानमंत्री गॉर्डन ब्राउन ने पाकिस्तानी सेना और ख़ुफ़िया एजेंसी आईएसआई को साफ़ चेतावनी दी है कि वे ओसामा बिन लादेन को खोज कर बाहर निकालें. इस मामले में ब्राउन ने पाकिस्तान की कड़ी आलोचना की है. जब ओबामा अफ़ग़ानिस्तान के लिए अपनी नई नीति का ख़ुलासा कर रहे थे, तो उन्होंने भी कड़ा रुख़ अपनाया. ओबामा ने ज़रदारी को लिखे एक पत्र में कहा कि पाकिस्तानी सेना को अपनी सरहद के अंदर आतंकवाद का सफ़ाया करने के लिए और भी मेहनत करनी होगी.

अमेरिकी प्रशासन के साथ सेना के रिश्ते में तनाव बढ़ता जा रहा है. सेना आरोप लगा रही है कि अमेरिकी प्रशासन भारत और पाक के बीच ठप पड़ी बातचीत की प्रक्रिया शुरू करने के लिए भारत पर दबाव डालने में असफल रहा है. इस्लामाबाद का यह भी आरोप है कि भारत अफ़ग़ानिस्तान में व्यापक मौजूदगी के ज़रिए पाकिस्तान को अस्थिर कर रहा है. मुमकिन है, उक्त सारी समस्याएं एक साथ आ सकती थीं, लेकिन वे 28 नवंबर के लिए माहौल बना रही थीं यानी ईद के दिन के लिए, जिसे मुस्लिम कैलेंडर में सबसे महत्वपूर्ण धार्मिक पर्व माना जाता है. उस दिन आधिकारिक माफ़ी यानी राष्ट्रीय सुलह अध्यादेश (एनआरओ) की अवधि ख़त्म हो गई, जिसके चलते ज़रदारी सहित 8,000 अन्य राजनेता, नौकरशाह और अधिकारी भ्रष्टाचार, हत्या और ऐसे ही कई अन्य अपराधों से अब तक बचते आ रहे थे. यह राष्ट्रीय सुलह अध्यादेश (एनआरओ) दिसंबर 2007 में तत्कालीन राष्ट्रपति जनरल परवेज मुशर्रफ़ और बेनज़ीर भुट्टो के बीच समझौते के रूप में सामने लाया गया था, ताकि भुट्टो निर्वासन से पाकिस्तान वापस लौट सकें और स्वतंत्रतापूर्वक चुनाव लड़ सकें. दिसंबर 2007 में उनकी हत्या के

यूसुफ़ रज़ा गिलानी

बाद पाकिस्तान पीपुल्स पार्टी (पीपीपी) ने चुनाव जीता और उनके पति आसिफ़ अली ज़रदारी अगस्त 2008 में राष्ट्रपति बने. सरकार, संसद या न्यायालय के ज़रिए एनआरओ के नवीकरण में असक्षम थी, क्योंकि पाकिस्तानी उच्चतम न्यायालय द्वारा इसके ख़िलाफ़ फ़ैसला दिया गया था. अब पीपीपी के हज़ारों नेताओं को भ्रष्टाचार के लिए सज़ा दी जा सकती है. हालांकि ज़रदारी अब भी बच सकते हैं, क्योंकि वह राष्ट्रपति हैं. अभी भी उन्हें संसद द्वारा महाभियोग के ज़रिए ही हटाया जा सकता है. पहले वह 11 साल तक भ्रष्टाचार और हत्या के आरोपों को झेल चुके हैं, जिसे पूर्ववर्ती सरकार द्वारा कभी साबित नहीं किया जा सका.

आसिफ़ अली ज़रदारी

नेशनल कमांड अथॉरिटी से सरकारी नियंत्रण हटा लिया गया, जो पाकिस्तान के लगभग 60 से 100 आणविक हथियारों की तैनाती और इस्तेमाल का ज़िम्मा संभालती है. ज़रदारी ने इसमें एक और अहम मुद्दा जोड़ा, सेना की मांग का. लेकिन सेना न्यूक्लियर हथियारों का प्रबंधन एवं नियंत्रण करती है. इसके बजट और काम करने वालों की जानकारी भी गुप्त रखी जाती है. ग़ैर फौजियों ने कभी भी पाकिस्तानी न्यूक्लियर कार्यक्रम को नियंत्रित नहीं किया. न तो ज़रदारी ने और न ही प्रधानमंत्री गिलानी ने, जो ख़ुद भी पीपीपी के नेता हैं. ज़रदारी का यह क़दम सांकेतिक है, लेकिन इससे उनकी कमज़ोरी और सेना को नियंत्रण में न रख पाने की अक्षमता का पता चलता है. साथ ही, ज़रदारी के लिए मूल बात लोकतंत्र की ज़रूरत है, जिससे वह अपनी शक्तियां प्रधानमंत्री और संसद को सौंप सकें. ज़ाहिर तौर पर, पाकिस्तान एक संसदीय लोकतंत्र है, लेकिन मुर्शरफ़ जो आर्मी प्रमुख और राष्ट्रपति दोनों थे, के पास असाधारण अधिकार थे. राजनीतिक दल इस बात पर ज़ोर दे रहे हैं कि इन अधिकारों को प्रधानमंत्री और संसद को वापस किया जाना चाहिए. हालांकि इन अधिकारों को पाकिस्तानी संविधान में 17वें संशोधन में शामिल किया गया.

आने वाले दिनों में ज़रदारी इन मांगों को पूरा करेंगे और अपने अधिकारों को सौंप देंगे, जिससे वह नखदंत विहीन हो जाएंगे. कई राजनीतिक अटकलें लगाई जा रही हैं कि क्या इससे सेना संतुष्ट होगी या यह सिर्फ़ ज़रदारी को इस्तीफ़े के लिए मजबूर करने की नीति है. ओबामा प्रशासन से राष्ट्रपति को समर्थन हासिल है, जिसने पाकिस्तान की गैर फौजी सरकार को मज़बूत करने की कोशिश की है. अमेरिकी कांग्रेस द्वारा एक विधेयक पारित किया गया, जिसमें ग़ैर फौजी संस्थाओं के पुनर्निर्माण के लिए 1.5 बिलियन डॉलर पांच वर्षों के लिए देने का वायदा किया गया है. इसके अलावा 2 बिलियन डॉलर सैन्य सहायता और सैन्य फंड में भी देने का वायदा किया गया है. बुश प्रशासन ने 2001 से 2007 के दौरान पाकिस्तान को 12 बिलियन डॉलर से भी अधिक की सहायता उपलब्ध कराई, लेकिन इसमें से 70 फ़ीसदी राशि का इस्तेमाल प्रत्यक्ष तौर पर सेना ने किया, जिसने पाकिस्तान में अमेरिका विरोधी आग में ईंधन का काम किया. अमेरिका की यह दुविधा है कि वह यदि ग़ैर फौजी सरकार को मदद देता भी है तो इसके बावजूद राजनीतिक हलकों में सेना का ही वर्चस्व बढ़ता है. दरअसल, सही मायनों में अभी भी सेना ही भारत और अफ़ग़ानिस्तान के प्रति पाकिस्तान की विदेश नीति को तय करती है. सेना और ग़ैर फौजी सरकार के संबंधों के बीच संतुलन क़ायम करना न सिर्फ़ पाकिस्तानी राजनेताओं के लिए मुश्किल हो गया है, बल्कि यह अमेरिका और नाटो के लिए भी एक गंभीर समस्या है.

(लेखक पाकिस्तान के वरिष्ठ पत्रकार हैं)

अहमद राशिद
feedback@chauthiduniya.com

नई अफ़ग़ान-पाक नीति ख़तरनाक क़दम

राहुल मिश्र

अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा अपनी अफ़ग़ानिस्तान-पाकिस्तान (अफ़ग़ान-पाक) नीति में पूरी तरह से विफल हो चुके हैं. इसी साल मार्च में ज़ोर-शोर से लाई गई अफ़ग़ान-पाक नीति कारगर साबित नहीं हुई. लिहाजा, आठ साल से अफ़ग़ानिस्तान में आतंकवाद के ख़िलाफ़ लड़ रही अमेरिकी सेना को बाहर निकालने के लिए ओबामा प्रशासन ने नई रणनीति की घोषणा की है. इसमें दो बातें सबसे अहम हैं. पहली, वह अमेरिकी सैनिकों की वापसी की बात कर रहे हैं और दूसरी यह कि 30 हज़ार अमेरिकी सैनिकों को अफ़ग़ानिस्तान भेजने के साथ हज़ारों विदेशी सैनिकों को अफ़ग़ानिस्तान में उतारने की तैयारी में लगे हैं. इस फ़ैसले से एक बात साफ़ है कि उनकी नई नीति पिछली नीति से कहीं ज़्यादा ख़तरनाक है.

फोटो– पीटीआई

अगले छह महीनों में अमेरिका तीस हज़ार अतिरिक्त सैनिकों को अफ़ग़ानिस्तान में उतारने जा रहा है. एक तरफ जहां ज़्यादा सैनिकों के साथ अमेरिका तालिबान और अलकायदा के ख़िलाफ़ सख्त रवैया अख्तियार करने जा रहा है, वहीं युद्ध के अंजाम को जाने बिना अमेरिकी सैनिकों को बाहर निकालने की योजना भी बना ली गई है. राष्ट्रपति का पद संभालते ही ओबामा ने तबाह हो चुके इराक को उसके हाल पर छोड़ दिया. इराक की तबाही को उनसे पहले राष्ट्रपति जॉर्ज बुश ने अंजाम दिया था. बुश प्रशासन का मानना था कि इराक दुनिया का सबसे ख़तरनाक मुल्क है. लिहाजा, इराक को तबाह कर दिया गया. वहां से दुनिया भर के लिए उपजे ख़तरे को इस क़दर मिटा दिया गया कि आज इराक में दशकों से चली आ रही व्यवस्था ख़त्म हो चुकी है. उसकी जगह पर पश्चिमी मॉडल के लोकतंत्र को स्थापित करने की कोशिश की गई, लेकिन इससे पहले कि नया ढांचा चलने के लिए तैयार होता, अमेरिका वहां से निकल गया. आज ओबामा प्रशासन को अफ़ग़ानिस्तान और पाकिस्तान दुनिया के लिए सबसे बड़ा ख़तरा नज़र आ रहे हैं. अफ़ग़ान-पाक नीति की नींव इसी ख़तरे से निबटने के लिए रखी गई. अपनी पहली अफ़ग़ान-पाक नीति से ओबामा को यह यक़ीन था कि वह दक्षिण एशिया के इस भाग में अमेरिकी नीतियों को लागू करने में सफल होंगे. उनकी कोशिश थी कि वह एक तरफ ईरान से संवाद स्थापित कर उसके परमाणु कार्यक्रम पर लगाम लगाने में सफल होंगे और इसके लिए वह उसे कुछ परमाणु रियायत देने के लिए भी तैयार थे. ओबामा प्रशासन का यह भी मानना था कि पाकिस्तान को वित्तीय मदद देने के नाम पर वह आसानी से पाकिस्तान सरकार, सेना और आईएसआई को संचालित कर सकेंगे तथा अफ़ग़ानिस्तान युद्ध में पाकिस्तान की मदद लेते रहेंगे. वह यह भी मानकर चल रहे थे कि चीन के साथ शिखर पर पहुंचे आर्थिक रिश्ते की आड़ में वह उससे किसी तरह के समझौते को अंजाम दे सकेंगे और अफ़ग़ानिस्तान में मौजूद अलकायदा एवं तालिबानी ताक़तों का सफ़ाया करने के बाद साबित कर सकेंगे कि अमेरिका एकमात्र ऐसी ताक़त है, जो अफ़ग़ानिस्तान में जीत दर्ज़ करने का दमखम रखता है. ओबामा की नीति में भारत के लिए भले ही कोई परोक्ष किरदार नहीं था, लेकिन आतंकवाद के सफ़ाए के साथ अफ़ग़ानिस्तान में निर्मित किए जाने वाले ढांचे में भारत की एक अहम भूमिका तय थी. स्कूल, कॉलेज, अस्पताल और सड़क के निर्माण के साथ-साथ भारत को अफ़ग़ानिस्तान के भावी लोकतांत्रिक ढांचे की नींव भी रखनी थी. लेकिन, एक-एक करके ओबामा की पुरानी अफ़ग़ान-पाक नीति का खोखलापन सामने आने लगा. ईरान ने अमेरिका की पेशकश ठुकरा दी, चीन यात्रा में ओबामा खाली हाथ गए और खाली हाथ वापस आ गए. अफ़ग़ान-पाक नीति के लिए चीन ने अमेरिका को अनसुना कर दिया और वह रिश्तों को आर्थिक स्तर पर ही जारी रखने पर अडिग रहा. पिछली अफ़ग़ान-पाक नीति के विफल होने में जितना योगदान ओबामा की नीतियों का था, उतना ही पाकिस्तान का है. अमेरिकी प्रशासन को इस बात का अंदाज़ा नहीं था कि पाकिस्तान को दी जा रही आर्थिक मदद वापस आतंकवाद को बढ़ावा देने के काम में लाई जा सकती है. पिछली नीति के चलते हज़ारों लोगों की जान जा चुकी है और अफगानिस्तान एवं पाकिस्तान में आतंकवाद की हालत जस की तस है. यह नई नीति अमेरिका को लगातार मिल रही हार का नतीजा है, जिसके चलते ओबामा की साख दांव पर लगी है. उनके पास ख़ूनखराबा करके स्थिति पर क़ाबू पाने के अलावा कोई रास्ता नहीं बचा है. लिहाजा ओबामा की यह नई अफ़ग़ान-पाक नीति और अधिक बर्बर है, जो उनका असली चेहरा दुनिया के सामने रख रही है. इस नीति के परिणामस्वरूप लाखों लोगों के सिर पर मौत मंडरा रही है.

rahul@chauthiduniya.com

MURUGAPPA GROUP

BSA MOTORS e-Scooters

BSA मोटार्स आ गया
सबके दिलों पे छा गया।

BSA MOTORS की हर एक इलैक्ट्रीक स्कूटर की खरीद पर पाईये
"एक साल की बैट्री वारंटी" एवम् "Rs. 4000/- का कैश कार्ड मुफ्त"।

Conditions apply##
*Ex. showroom Price starting from Rs.15,450/- for Smile in Delhi after subsidy & cash card.
*$ Battery Warranty of 12 months / 12000 km's whichever is earlier & applicable.
*# Savings Vary from model to model.

SHAHDARA: Binsar Auto Mobiles, 954 - E, Main 100 Ft Road, Babarpur Extn.Shahdara. Phone: 011-22831100 / 22831400/9911994444/9911450121. **NAJAFGARH: CNS Retail Pvt Ltd,** Plot No. 1, Block – G, Gopal Nagar. Phone: 011 - 28015634 / 28010709/ 09958019000/9212365634. **DWARKA-MAIN PALAM DABRI ROAD: CNS Retail Pvt Ltd,** D - 70/5, Main Palam Dabri Road, Mahavir Enclave. Phone: 011 – 28011702/ 45017150/09818239724/ 9212275634/ 9212170006. **NANGLOI: CNS Retail Pvt Ltd,** Plot No 18, Ram Nagar Colony, Main Najafgarh Road, Nangloi. Phone: 9971734599 / 9213899686. **KRISHNA NAGAR: Agrawal Motors,** A-1/14. Krishna Nagar, Chachi Building Chawk,Near Lal Quarter Market. Phone: 011 – 22452829/09312835117. **KAROL BAGH: Imperial Cycles,** 53/2, Deshbandhu Gupta Road, Karol Bagh. Phone: 011-65461542/ 28722276/25717886/9811453355. **ASHOK NAGAR: New Golden Cycle Store,** 36/13, Ground Floor, Ashok Nagar. Phone: 9810807183. **NOIDA: Agrawal Motors,** B-41 & 42, Sector 16 , Near Mirula's Hotel, Gautam Budh Nagar. Phone: 0120-4249906/ 4232242/9312835117/ 09350906906. **ROHINI: Rocky Autolinks,** F 18/61, Rohini, Sector 8. Phone: 9811032353 (Opening Shortly)

देश की दो मशहूर कंपनियां वैद्यनाथ और धन्वंतरि फार्मास्युटिकल, चंदौसी (उत्तर प्रदेश) अपनी दवाओं में स्टेरॉयड मिला रही हैं.

यह दवा नहीं, ज़हर है

आयुर्वेदिक कंपनियों की दवाओं में स्टेरॉयड

शशि शेखर

कहते हैं कि ज्यों–ज्यों दवा की, मर्ज़ बढ़ता ही गया. आख़िर क्यों न बढ़े मर्ज़? जब दवा की शक्ल में आप ज़हर लेंगे तो मर्ज़ बढ़ेगा ही. वह भी उन नामी–गिरामी आयुर्वेदिक कंपनियों की दवाएं, जिनका नाम ही विश्वास का प्रतीक माना जाता है. ज़रा सोचिए, उस मां का क्या हाल होगा, जिसे यह पता चले कि जो दवा वह अपने बच्चे को उसकी स्मरण शक्ति बढ़ाने के लिए पिला रही है, असल में वही दवा बच्चे को मानसिक रोगी बना रही है अथवा किडनी और लीवर से जुड़ी बीमारियों को जन्म दे रही है. आप उस वक़्त क्या करेंगे, जब यह पता चले कि जिस दवा का इस्तेमाल आपकी बीवी कर रही है, वह दवा उसे ब्लड प्रेशर, हार्ट, किडनी से जुड़े रोग परोस रही है. कुछ ऐसी ही आयुर्वेदिक कंपनियों और उनके द्वारा बनाई जा रही दवाओं की ख़बर ली है चौथी दुनिया ने, ताकि आपको समय रहते सचेत किया जा सके. हम यहां उन कंपनियों और उनकी मशहूर दवाओं के बारे में बता रहे हैं, जो असल में हमारे और आपके लिए दवा की शक्ल में ज़हर हैं.

ज़हर के रूप में इन दवाओं को बनाने का काम वैद्यनाथ और धन्वंतरि फार्मास्युटिकल, चंदौसी (उत्तर प्रदेश) जैसी मशहूर कंपनियां कर रही हैं. यह ख़ुलासा हुआ है भारत सरकार के स्वास्थ्य मंत्रालय के अधीन काम कर रही फार्माकोपियल लेबोरेट्री फॉर इंडियन मेडिसिन, ग़ाज़ियाबाद की एक जांच रिपोर्ट से. चौथी दुनिया के पास मौजूद इस रिपोर्ट से पता चलता है कि आयुर्वेदिक दवा बनाने वाली इन कंपनियों की दवाओं में मिलावट है. मिलावट भी ऐसी–वैसी नहीं, बल्कि घातक और जानलेवा. लैबोरेट्री में 14 आयुर्वेदिक दवाओं के सैंपल जांच के लिए भेजे गए थे. 10 अगस्त 2009 को जब जांच रिपोर्ट मिली तो श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन (सोलन) और धन्वंतरी फार्मास्युटिकल, चंदौसी की दवाओं में मिलावट की पुष्टि हो गई. इन कंपनियों के एक–एक मशहूर ब्रांड में स्टेरॉयड पॉजीटिव पाया गया. वही स्टेरॉयड, जिसके सेवन से आप कई जानलेवा और घातक बीमारियों की चपेट में आ सकते हैं.

रिपोर्ट के मुताबिक़, श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन (सोलन) द्वारा बनाए गए शंखपुष्पी सीरप (बैच संख्या–वीएन–127) में स्टेरॉयड की मात्रा मौजूद है. अभी तक लोगों को यही पता था कि शंखपुष्पी सीरप बच्चों की स्मरण शक्ति बढ़ाने में मदद करता है. मां–बाप भी परीक्षा के दौरान अपने बच्चों को यह सीरप पिलाने में कोई कोताही नहीं बरतते, ताकि उनके बच्चे अच्छे नंबर ला सकें. लेकिन उन्हें क्या मालूम कि यह सीरप पीकर अच्छे नंबर लाने वाले बच्चों को इसकी क्या क़ीमत चुकानी पड़ेगी. दिल्ली मेडिकल एसोसिएशन के अध्यक्ष डॉ. अनिल बंसल के मुताबिक़, स्टेरॉयड सेवन करने वाले लोगों को कृत्रिम रूप से अच्छा महसूस होने लगता है और इसी से लोग समझने लगते हैं कि अमुक दवा उन्हें फ़ायदा कर रही है, लेकिन इसकी असलियत कुछ और ही होती है. बहुत संभव है कि स्मरण शक्ति बढ़ाने वाला यही सीरप आगे चलकर इन बच्चों को मानसिक रोगी बना दे.

इसी तरह धन्वंतरी फार्मास्युटिकल, चंदौसी के सीरप सुंदरी सुधार (बैच संख्या–403) में भी जांच के दौरान स्टेरॉयड की मात्रा पाई गई. महिलाओं को स्वस्थ और सुंदर बनाने का दावा करने वाली इस दवा में मौजूद स्टेरॉयड असल में महिलाओं के स्वास्थ्य के लिए घातक साबित हो सकता है. उस पर तुर्रा यह कि कंपनी सीरप के अंदर डाले गए पर्चे में इस दवा के लगातार तीन महीने (92 दिन) तक सेवन की सलाह देती है. धन्वंतरी फार्मास्युटिकल ने एक और चालाकी की है. एक अन्य कंपनी सुंदरी सुधा नाम से सीरप बनाती है. इसलिए धन्वंतरी फार्मास्युटिकल ने लोगों को भ्रमित करने के लिए सुंदरी सुधार शब्द के आख़िरी अक्षर आर को इस तरह छुपा दिया है कि लोग इसे भी सुंदरी सुधा ही समझें. ज़ाहिर है, यह मामला न सिर्फ़ मिलावट का है, बल्कि जालसाजी का भी है.

इन दवाओं की जांच जिस लैबोरेट्री में की गई है, वह भारत सरकार के स्वास्थ्य मंत्रालय द्वारा स्थापित है और ख़ास तौर पर इसकी स्थापना आयुर्वेदिक दवाओं की जांच के लिए ही की गई है. ऐसे में सवाल उठता है कि जब लेबोरेट्री को इस मिलावट की जानकारी है तो क्या मंत्रालय को उक्त सारे तथ्य नहीं मालूम होंगे? भारत सरकार के स्वास्थ्य मंत्रालय के तहत आयुष नामक एक विभाग है, जिसका मुख्य काम आयुर्वेदिक दवाओं के उत्पादन पर नज़र रखना और उनकी जांच करना है. लेकिन, बिरले ही ऐसे मामले सामने आए हैं, जहां आयुष ने अपनी तरफ से पहल करके कभी ऐसी कोई कार्रवाई की हो. आज भारत में आयुर्वेदिक दवाओं का कारोबार एक उद्योग का रूप ले चुका है. देश ही नहीं, विदेशों से भी लोग यहां आयुर्वेदिक इलाज कराने आ रहे हैं. ज़ाहिर है, कुछ दवा कंपनियां इस मौक़े का फ़ायदा तो उठाएंगी ही. लेकिन ऐसा लगता है कि सरकार को आम आदमी की जान की कोई परवाह नहीं है. क्या इसका यह मतलब निकाला जाना चाहिए कि कहीं कोई गड़बड़ी नहीं है? या फिर सरकार को सब कुछ पता है, लेकिन वह कुछ नहीं कर पा रही है? क्या हज़ारों करोड़ का कारोबार करने वाली इन आयुर्वेदिक कंपनियों की लॉबी ने सरकार और उसकी मशीनरी के हाथ–पांव बांध दिए हैं? लेकिन इतना तो साफ़ हो गया है कि रोज़ बाज़ार में दवाओं की नई खेप पहुंच रही है और साथ में नई–नई बीमारियां भी. लोग पहले से ज़्यादा बीमार हो रहे हैं. फ़िलहाल यही कहा जा सकता है, दर्द की दवा पाई, दर्द बे–दवा पाया.

shashishekhar@chauthiduniya.com

Name	B.No.	Mfg. Dt.	Mfg. by	Heavy Metal (Lead)	Ingredients	Steroids (by TLC)
[illegible]	P47	01/07	Charak pharma Pvt.Ltd. At: J-102, MIDC Tarapur Ind. Area Boisar-401506 Dist- Thane Marketing Office:- 501-A, Poonam Chambers, Dr. A.B.Road Mumbai.	-	Ocimum Sanctum (Tulsi)- Positive	Negative
Sundri Sudha	403	11/07	Dhanwantri Pharmaceuticals Jawahar Road, Chandausi (U.P.)	-	Saraca indica(Ashok)- Positive Withania somnifera (Ashwagandha) – Positive	Positive
[illegible] Pushpi	VN-127	01/08	Shree Baidyanath Ayurved Bhawan Pvt. Ltd. At- Vaidya Nutraceuticals Pvt. Ltd. Barotiwala,		Shankhpushpi- Positive Brahmi- Positive	Positive

Attested
डा. जय प्रकाश
Dr. JAI PRAKASH
Dr. D.R. Lohar
(Director)

फार्माकोपिकल लेबोरेट्री फॉर इंडियन मेडिसिन, ग़ाज़ियाबाद की जांच रिपोर्ट, जिसमें श्री वैद्यनाथ और धन्वंतरि फार्मास्युटिकल, चंदौसी के दो सीरप शंखपुष्पी और सुंदरी सुधा में स्वास्थ्य के लिए खतरनाक स्टेरॉयड की पुष्टि हुई है.

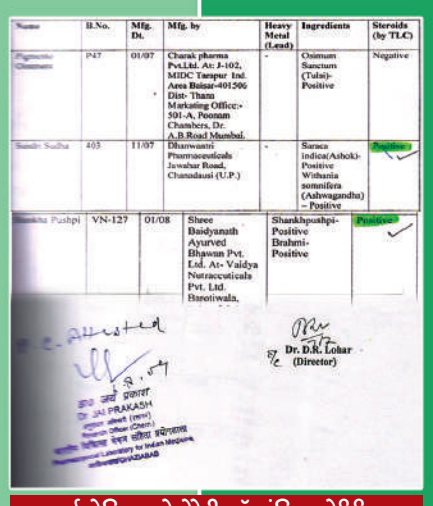

स्टेरॉयड के साइड इफेक्ट

आमतौर पर कसरती बदन की चाह रखने वाले लोग जानते–बूझते हुए भी स्टेरॉयड का सेवन करते हैं और कुछ समय बाद उसके दुष्परिणाम भी भुगतते हैं. लेकिन उन लोगों का क्या दोष है, जिन्हें दवा कंपनियां अनजाने में स्टेरॉयड के रूप में ज़हर पिला रही हैं. यदि कोई इंसान डॉक्टरी सलाह के बिना स्टेरॉयड युक्त दवा का सेवन करता है तो इसके कई घातक परिणाम देखने को मिल सकते हैं. डॉक्टरों के मुताबिक़, इससे कई प्रकार की बीमारियां हो सकती हैं. स्टेरॉयड आपके लिए दिल की बीमारी और गुर्दे की तक़लीफ़ का कारण बन सकता है. यह बच्चों को मानसिक रोगी बना सकता है. स्टेरॉयड लीवर, ब्लड प्रेशर, चर्म रोग, बाल झड़ना, गर्दन का मोटापन, हार्मोन में गड़बड़ी जैसे ख़तरनाक रोगों को निमंत्रण देता है. यह पुरुषों में शुक्राणुओं का क्षय करने के साथ ही महिलाओं की सेहत के लिए भी समान रूप से ख़तरनाक है. सबसे अधिक तो यह कम उम्र के बच्चों के लिए घातक है. दिल्ली मेडिकल एसोसिएशन के अध्यक्ष डॉ. अनिल बंसल कहते हैं कि अगर कोई इंसान पहले से स्टेरॉयड ले रहा है और कुछ समय बाद वह अचानक इसका सेवन बंद कर देता है तो ऐसा करना जानलेवा साबित हो सकता है. डॉ. बंसल की राय में स्टेरॉयड का सेवन धीरे–धीरे बंद करना चाहिए. ज़ाहिर है, कोई जानबूझ कर ऐसा ज़हर क्यों पिएगा? लेकिन जब दवा में ही यह जहर मिला हो तो भला कोई क्या कर सकता है?

डॉक्टर की कलम से

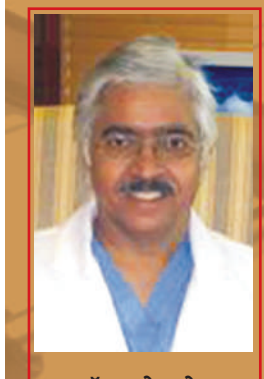

महिलाएं करें दिल की सुरक्षा

डॉ. अशोक सेठ
चेयरमैन, कार्डियैक साइंसेज़ एवं मुख्य हृदय रोग विशेषज्ञ एस्कॉर्ट्स हृदय एवं अनुसंधान केंद्र, नई दिल्ली.

अधिकतर महिलाएं सोचती हैं कि हृदय रोग पुरुषों की समस्या है, लेकिन यह बिल्कुल ग़लत धारणा है. जरनल ऑफ द अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन की रिपोर्ट के अनुसार, ऐक्यूट कोरोनरी सिंड्रोम (अइड) यानी दिल की रक्तवाहिका में चर्बी के जमावड़े के टूटने के बाद 30 दिनों के अंदर मर्दों की तुलना में महिलाओं के लिए मौत का जोख़िम ज़्यादा होता है. हृदयाघात के बाद पहले वर्ष में पुरुषों की मृत्यु दर 25 प्रतिशत और महिलाओं की मृत्यु दर 38 प्रतिशत होती है. कम उम्र के मरीज़ों में यह अंतर और अधिक है. 50 साल से कम उम्र की औरतों में इसी वर्ग के पुरुषों के मुक़ाबले मृत्यु दर दोगुनी है.

रजोनिवृत्ति के बाद हृदय रोग विकसित होने का ख़तरा 2–3 गुना बढ़ जाता है. जो स्त्रियां धूम्रपान करती हैं, उन्हें 2 से 6 गुना ज़्यादा ख़तरा होता है. शारीरिक निष्क्रियता, मधुमेह और उच्च कोलेस्ट्रॉल आदि दिल की बीमारी में प्रमुख रूप से योगदान देते हैं. 66 से 75 प्रतिशत मधुमेह के मरीज़ दिल के रोग से मरते हैं. मधुमेह से ग्रस्त कई औरतों को उच्च रक्तचाप की शिकायत भी होती है, जिससे उनका वज़न अधिक रहता है, नतीजतन हृदय रोग हो सकता है. कई औरतों के लिए इस रोग का पहला लक्षण है हार्ट अटैक. इसमें छाती के निचुड़ने या भरे होने का एहसास होता है और दर्द बढ़कर बाएं जबड़े, कंधे या शरीर के बाएं हिस्से के किसी भी अंग को प्रभावित कर सकता है. उबकाई या चक्कर आना, सांस छोटी होना इसके लक्षण हैं. कई बार हार्ट अटैक सीने में दर्द के रूप में पता नहीं चलता, बल्कि अपच, पसीना, घबराहट और गश आने के रूप में प्रकट होता है. हालांकि ऐसा बहुत कम होता है. बताए गए लक्षणों के प्रकट होने पर मरीज़ का ईसीजी कराकर उपयुक्त इलाज बेहद ज़रूरी है.

दिल की सुरक्षा के लिए रोज़मर्रा तौर पर अपनी उन आदतों को बदलना होगा, जो हृदय के लिए नुक़सानदायक हैं. हाइपरटेंशन को रोकने वाले खानपान, तेज़ चलने, वैजीटेबल सूप पीने और शरीर का वज़न नियंत्रण में रखने से हृदय की रक्षा करना बहुत आसान हो जाता है. फल, सब्ज़ियां, उच्च आहारीय रेशा युक्त खुराक, वसामुक्त या कम वसा वाला दूध और साबुत अनाज खाने में शामिल करना चाहिए. साबुत अन्न के उत्पाद जैसे व्होलग्रेन ब्रेड, क्रैकर्स, वैफल्स, पैनकेक्स एवं ओट्स में विलयशील रेशे व बीटा ग्लूकेन होते हैं, जिनमें कोलेस्ट्रॉल को कम करने की क्षमता होती है. इससे हृदय रोग का जोख़िम घटता है. स्वस्थ हृदय होने से आप उम्र भर उर्जावान रहते हैं. ज़ाहिर है, स्वस्थ हृदय के लिए की गई कोशिशों का यह एक बड़ा पुरस्कार है. आख़िर आप पर परिवार के स्वास्थ्य की भी ज़िम्मेदारी है.

राशिफल

14 दिसंबर–20 दिसंबर 2009

मेष (21 मार्च से 20 अप्रैल): शिक्षा प्रतियोगिता की दिशा में चल रहे प्रयास सफल होंगे. यात्रा की योजना बन सकती है. आर्थिक क्षेत्र में मज़बूती मिलेगी. स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान दें. परिवार के साथ अधिक समय गुज़ारें. मित्रों का सहयोग मिल सकता है.

वृष (21 अप्रैल से 20 मई): अनावश्यक ख़रीददारी से बचें. व्यवसाय में नुक़सान होने की आशंका है. यात्रा व देशाटन के योग हैं. पारिवारिक सहयोग मिलेगा. किसी से बिना वजह न उलझें. बाज़ार में पैसा न लगाएं, यह सही समय नहीं है. धार्मिक कार्यों में मन लगाएं.

मिथुन (21 मई से 20 जून): पूजा–पाठ में अधिक समय बीतेगा. ईश्वर के प्रति आस्था बढ़ेगी. ऑफिस के कार्यों में कुछ अड़चनें आएंगी. प्रणय संबंधों में निकटता आएगी. बच्चों के साथ कहीं बाहर जा सकते हैं. खान–पान पर विशेष ध्यान रखने की ज़रूरत है. समय अनुकूल है.

कर्क (21 जून से 20 जुलाई): ज़मीन या वाहन पाने की लालसा पूरी होगी. पारिवारिक प्रतिष्ठा में बढ़ोतरी होगी. राशि का मंगल उत्तेजना देगा. दान हितकर होगा. पुराने दोस्तों से मुलाक़ात होने की संभावना है. वाहन ख़रीदने के योग बन रहे हैं.

सिंह (21 जुलाई से 20 अगस्त): लंबी यात्रा का योग बन रहा है. शिक्षा के क्षेत्र में किए गए प्रयास सफल होंगे. व्यवसायिक प्रयास फलीभूत होंगे. जीवन साथी का सहयोग और सानिध्य मिलेगा. प्रतियोगिता में सफलता मिलने से आत्मबल में वृद्धि होगी.

कन्या (21 अगस्त से 20 सितंबर): आपकी राशि पर शनि मन को कमज़ोर कर रहा है. भटकाव की स्थिति बनी रहेगी, अत: आप राधा–कृष्ण की उपासना करें. शनि का दान करें, यह आपके लिए लाभदायक होगा. सहयोगियों से मेलभाव बनाकर रखें. मदद मिलने की संभावना है.

तुला (21 सितंबर से 20 अक्टूबर): संतान के दायित्व की पूर्ति होगी. आर्थिक मामलों में खुशखबरी मिल सकती है. नौकरी के योग हैं. इस सप्ताह जो भी प्रयास करेंगे, व्यर्थ नहीं जाएगा. त्वचा का रोग और पेट संबंधी समस्या हो सकती है. आप शनि से संबंधित वस्तुएं दान करें.

वृश्चिक (21 अक्टूबर से 20 नवंबर): पिछले कुछ समय से अटके हुए कार्यों के संपन्न होने की संभावना है. अदालत के चक्कर लगाने पड़ सकते हैं. किसी भी विवाद में न उलझें. व्यर्थ की परेशानी का सामना करना पड़ सकता है. परिवार को समय दें. पूजा–पाठ और दान करें.

धनु (21 नवंबर से 20 दिसंबर): जीविका के क्षेत्र में संतोषजनक प्रगति होगी. यात्रा सुखद और मनोरंजक रहेगी. उपहार या सम्मान का लाभ मिलेगा. काम में उलझे रहेंगे. निजी संबंधों में प्रगाढ़ता आएगी. स्वास्थ्य का ध्यान रखने की ज़रूरत है.

मकर (21 दिसंबर से 20 जनवरी): व्यवसायिक मामलों में किसी तरह का समझौता करने से बचें. आर्थिक योजनाओं को अमल में लाएं. यात्रा में अपने सामान का ध्यान रखें. चोरी या धन हानि की आशंका है. पितृ सेवा करें, उचित फल मिलेगा.

कुंभ (21 जनवरी से 20 फरवरी): यात्रा के योग बन रहे हैं, जो सुखद रहेगी. परिवार के साथ वक़्त गुज़रेगा. यात्रा को व्यवसायिक रूप देकर आप उसका लाभ उठा सकते हैं. जीविका के क्षेत्र में किए गए रचनात्मक कार्यों की प्रशंसा होगी. सहयोगियों से मेलजोल बनाकर रखें.

मीन (21 फरवरी से 20 मार्च): परिवार के सदस्यों से विवाद हो सकता है. पारिवारिक कार्यों की व्यस्तता स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकती है. आर्थिक मामलों में अधिक जोख़िम लेने की कोई आवश्यकता नहीं है. निवेश के लिए यह समय अनुकूल नहीं है.

ज्योतिषाचार्य पं. सुदर्शन

एक जमाना था, जब मीडिया कुंभ के आयोजन की ओर ध्यान भी नहीं देती थी, लेकिन पिछले कुछ दिनों में बहुत कुछ बदल गया है. इसके फ़ायदे भी हैं और नुक़सान भी.

रूपकुंड से आगे की यात्रा

अनंत विजय

पिछले दिनों कई मित्रों से इस बारे में बातें हुईं कि नया क्या पढ़ा है. मित्रों ने कई ऐसी किताबों के नाम बताए जिसे या तो पढ़ चुका था या फिर पत्रों में उसकी चर्चा पढ़कर इतना जान चुका था कि उसमें नया कुछ लग नहीं रहा था. इस बीच एक वरिष्ठ आलोचक से बात हो रही थी. नई किताबों पर उनसे चर्चा शुरू हुई तो उन्होंने कहा कि उत्तराखंड के मुख्यमंत्री रमेश पोखरियाल निशंक की एक किताब–*हिमालय का महाकुंभ: नंदा राजजात* आई है, और वह किताब उल्लेखनीय है. उन्होंने ज़ोर देकर कहा कि मुझे वह किताब पढ़नी ही चाहिए. बातचीत ख़त्म हो गई, लेकिन उस किताब को लेकर मेरे मन में कोई उत्साह नहीं बना. मेरे अवचेतन में रमेश पोखरियाल निशंक पर अशोक वाजपेयी की जनसत्ता में प्रकाशित टिप्पणी भी थी. बात आई गई, हो गई. अचानक एक दिन दफ्तर से जब देर रात घर लौटा तो एक भारी–किताब मिली, खोला तो उसके अंदर *हिमालय का महाकुंभ: नंदा राजजात* की एक प्रति थी. काग़ज और छपाई बेहतरीन थी. लेकिन निशंक का नाम देखकर उस किताब को अन्य किताबों के साथ रख दिया.

यह सबकुछ तब हो रहा था, जब मैं विलियम डेलरिंपल की किताब *नाइन लाइव्स–इन सर्च ऑफ द सैक्रेड मॉडर्न इंडिया* पढ़ रहा था. डेलरिंपल की किताब पढ़कर अच्छा लगा. उसमें उन्होंने भारत के अलग–प्रदेशों की यात्रा कर नौ कहानियां लिखी हैं, जिसमें जैन साध्वी, देवदासी आदि पर नौ अलग अध्याय हैं. डेलरिंपल की किताब ख़त्म कर जब मैं उस पर लिखने बैठा तो कुछ किताबें मेरे जेहन में आईं. एक तो हाल में आई मधु कांकड़िया की किताब *सेज पर संस्कृत*, जिसमें जैन धर्म और साध्वियों के बारे में विस्तार से लिखा है और दूसरे लगभग पांच छह वर्ष पूर्व प्रकाशित शरद पगारे की किताब *उजाले की तलाश*–जिसमें देवदासी प्रथा पर विस्तार से लिखा गया है. अचानक मेरे दिमाग़ में ये बात कौंधी कि क्यों न *हिमालय का महाकुंभ: नंदा राजजात* पर भी एक नज़र मार ली जाए, क्योंकि उसे उलटते पुलटते यह लगा था कि उस किताब में भी भारतीय धर्म और उससे जुड़ी लोकथाओं के बारे में लिखा गया है. और फिर मैंने इसे पढ़ना शुरू किया.

जब रमेश पोखरियाल निशंक की इस किताब को पढ़ना शुरू किया तो उत्सुकता लगातार बढ़ती चली गई और जिसे मैंने अगंभीर किताब मानकर किनारे कर दिया था, वो एक अहम किताब निकली. लिखने का अंदाज़ रोचक और जानकारियों से परिपूर्ण यह किताब बेहद अहम है. राजजात का अर्थ होता है, राजा की जात. इसका संबंध हिंदू धर्म से जुड़ा है. उत्तराखंड में एक धार्मिक यात्रा से बढ़कर इसका महत्व है. माना जाता है कि दो सौ अस्सी किलोमीटर की यह यात्रा हिमालय की बेटी नंदा की मायके से ससुराल की विदाई की यात्रा है. इस यात्रा की ख़ास बात यह है कि यह त्रिशूली नंदाघुंघटी की तलहटी से चौसिंग्या खाडू (चार सींगो वाला भेड़) की पीठ पर लदे गठरियों में मायके की सौगात लेकर नंदा ससुराल यानि कैलाशधाम जाती है. सदियों से चली आ रही यह यात्रा प्रत्यक्ष रूप में तो एक धार्मिक आस्था यात्रा लगती है, लेकिन लेकिन हाड़ कंपा देने वाली ठंड और मौत से लड़ाई लड़ते हुए की जाने वाली इस यात्रा में हिमालयी लोककला, संस्कृति, सरोकारों और परंपराओं की एक पूरी श्रृंखला दिखाई देती है.

280 किलोमीटर इस यात्रा में यात्रियों को रहस्य और रोमांच का अनुभव तो होता ही है, इसमें हिमालय की गोद में बसे इस राज्य की नैसर्गिक छटा और अद्भुत दृश्यों से भी मन खिल उठता है. उत्तराखंड के लोग इस यात्रा को मां नंदा की भक्ति से भी जोड़कर देखते हैं. नंदा रजजात में बेटी की विदाई से जुड़ी यह यात्रा स्त्रियों को मिलने वाले मान और पुत्री प्रेम का अद्भुत नमूना है. उन्नीस पड़ावों से गुज़रनेवाली इस

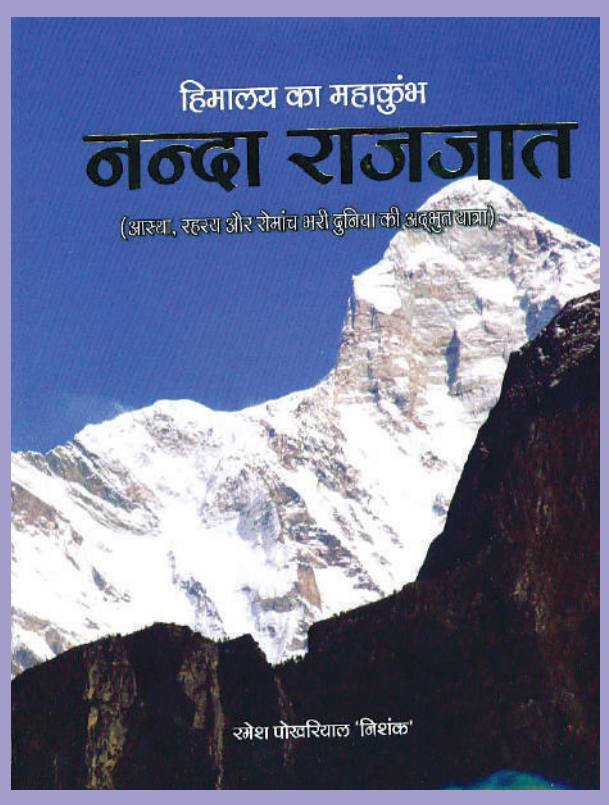

दुर्गम यात्रा को रास्तेभर गांव वालों का पूरा प्यार और सम्मान मिलता है. हज़ारों लोग इस यात्रा में शामिल होते हैं और प्रतिदिन लगभग पांच से पच्चीस किलोमीटर तक की यात्रा करते हैं. यात्रा के दौरान यात्रियों का जत्था जिस भी गांव से गुज़रता है वहां उनका ज़ोरदार स्वागत किया जाता है. यात्रियों की हर ज़रूरत को गांववाले श्रद्धा भाव से पूरा करते हैं. दरअसल इस यात्रा के पीछे विद्वानों और इतिहासकारों में ज़बरदस्त मतांतर है. जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि पौराणिक मान्यताओं के मुताबिक़, नंदा राजजात का संबंध पिता का पुत्री को ससुराल के लिए विदा किए जाने की मान्यता से जुड़ा है. कई इतिहासकारों के लेखों और स्थानीय जागरों (लोकगीतों) में इस बात का उल्लेख है कि भगवान शिव की प्रथम पत्नी सती ने कनखल में अपने पिता दक्ष प्रजापति के यज्ञ में शिव को आमंत्रित नहीं किए जाने के विरोध में अपने शरीर को भस्म कर दिया और इसके बाद हिमालय नरेश और मैनावती के घर में नंदा के रूप में जन्म लिया. जागरों में इस बात का वर्णन है कि नंदा ने कठोर तपस्या कर शिव को फिर से पति के रूप में प्राप्त किया. जागरों के मुताबिक़, नंदा के माता–पिता इस बेमेल विवाह के लिए राजी नहीं थे, क्योंकि सती की विरह में शिव ने अवधूत का रूप धारण कर लिया था और अघोरियों से घिरे रहने लगे थे. लेकिन नारद की मध्यस्थता के बाद यह विवाह संपन्न हो सका. उस इलाक़े की लोकगीतों में इस बेमेल विवाह के कई प्रमाण मिलते हैं. जब नंदा कैलाश के दुर्गम और विकट पर्वत शिखरों पर पहुंचती है तो उसे मायके की बेहद याद आती है. इस यात्रा के दौरान ही रूपकुंड मिलता है. कहा जाता है कि शिव जब विवाह के बाद नंदा के साथ लौट रहे थे तो उसे प्यास लगी और शिव ने अपने त्रिशूल के वार से एक कुंड बना दिया, जिसमें नंदा के रूप को निहार कर शिव ने उसका नाम रूपकुंड रख दिया. अभी कुछ दिनों पहले मेरे एक सहयोगी ने रूपकुंड की दुर्गम यात्रा की थी और वहां मौजूद बड़े–नरकंकालों से हमारा परिचय करवाया था. उस वक़्त तक मुझे इस यात्रा के पौराणिक महत्व का पता नहीं था.

इतिहास में इस बात के प्रमाण भी मिलते हैं कि जब देश पर अंग्रेजों का राज था तो अठारह सौ बयासी में नंदा की चोटी पर चढ़ने के प्रयास शुरू हो गए थे. उन्नीस सौ चौंतीस में ब्रिटिश नागरिक एरिक सिप्टन और टिलमैन ने ऋषिगंगा और द्रोणगिरि से होकर नंदादेवी तक पहुंचने के रास्ते का पता लगाया था. उन्नीस सौ छत्तीस में टिलमैन ने एक बार फिर से नंदा देवी की यात्रा की और पूरे विश्व के समक्ष अपना वर्णन प्रस्तुत किया.

हिंदी साहित्य में यात्रा वृतांत की एक लंबी परंपरा रही है. राहुल सांकृत्यायन से लेकर कृष्णनाथ तक. हिमालय की तराई बार–लोगों को अपनी ओर आकृष्ट करता है. इसमें काका कालेलकर की *हिमालय की यात्रा* और कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी की *बद्रीनाथ की ओर* उल्लेखनीय है. इन पुस्तकों में यात्रा की आंखों देखी है. मुंशी जी ने अपना यह यात्रा वृतांत तब लिखा था जब वह उत्तर प्रदेश के राज्यपाल थे. प्राकृतिक स्वरूप का वर्णन हिंदी के यात्रावृत्त की एक प्रमुख प्रवृत्ति है और अमूनन इस तरह के हर लेखन में पहाड़ों की अद्भुत छटा, कलकल करती नदियां या झरने या बर्फ़ से ढके पर्वत शिखरों का वर्णन मिलता है. निशंक की इस किताब में प्राकृतिक छटा का उल्लेख तो है ही, लेकिन यह सिर्फ़ वर्णन भर नहीं है. वह किसी स्थान विशेष या स्थिति विशेष से भौंचक्का नहीं रह जाता, बल्कि उसके हर पहलू को परखने की कोशिश करता चलता है और उस खास घटना या पहलू की तह तक जाता है. लोकगीतों के माध्यम से लेखक मान्यताओं की पुष्टि करने का प्रयास भी करता है. दरअसल निशंक ने यात्रा को एक सर्जनात्मक उपलब्धि के तौर पर पेश किया है और उसमें सफलता भी प्राप्त की है. मेरा विश्वास है कि निशंक की यह कृति हिंदी में उपलब्ध किसी भी यात्रा–से कमज़ोर नहीं है और इसे सिर्फ़ इस आधार पर ख़ारिज़ नहीं कर दिया जाना चाहिए कि इसे भारतीय जनता पार्टी से संबद्ध किसी राजनेता ने लिखा है.

(लेखक आईबीएन 7 से जुड़े हैं)

feedback@chauthiduniya.com

भारत की आबादी मूलत: चार जातियों का मिश्रण

भारत को विविधताओं का देश कहते हैं. यह विविधता अलग–अलग समय में बाहर से यहां आकर बसने वाली आबादी और उनके संकेंद्रण की वजह से है. जब लोग आए तो उनके साथ उनकी भाषाएं और संस्कृतियां आईं. अलग–अलग मान्यताएं और विचारधाराएं भी आईं. इसने भारत भूमि को एक बहुरंगा स्वरूप प्रदान किया. भारत के मुख्य धर्म सनातन जिसे आम तौर पर हिंदू धर्म के नाम से जाना जाता है, पर विचार करने से पहले आइए यह मालूम करते हैं कि भारत की आबादी में मुख्य संकेंद्रण किन जातियों का है? वे कौन लोग थे, जिन्होंने सबसे पहले यहां रहना शुरू किया और आज वे यहां की आबादी का मुख्य हिस्सा हैं?

भारत वर्ष में मुख्यत: चार प्रकार के लोग मिलते हैं. उनकी शारीरिक संरचना के आधार पर हम उन्हें एक दूसरे से अलग करते हैं. शरीर के कुछ जैविक लक्षण ऐसे हैं जो पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होते जाते हैं. देशकाल व पर्यावरण का इन लक्षणों पर बहुत ज़्यादा असर नहीं पड़ता है. एक तरह के लोग तो वे हैं, जिनका क़द छोटा, रंग काला, नाक चौड़ी और बाल घुंघराले होते हैं. इस जाति के लोगों ने जंगलों को अपना ठिकाना बनाया. ये प्रकृति की गोद में बसते हैं. इनके बारे में माना जाता है कि ये उन आदिवासियों की संतान हैं, जो आर्यों और द्रविड़ों के आगमन के पूर्व इस देश में आकर बसे थे तथा जो जंगली जीवन जीने के अभ्यस्त होने के कारण अब भी शहरों से दूर जंगलों में ही रहने में सुख महसूस करते हैं. ये प्राकृतिक माहौल में रहते हैं और इनकी ज़िंदगी, अर्थ व्यवस्था और रीतिरिवाज बहुत हद तक प्रकृति के ऊपर ही निर्भर हैं.

एक दूसरी तरह के लोग भी हैं. ये क़द में छोटे होते हैं. इनका रंग काला, मस्तक लंबा, सिर के बाल घने और नाक खड़ी व चौड़ी होती है. रंग और क़द में ये आदिवासी लोगों से काफ़ी समानता रखते हैं, किंतु ये उनसे बिल्कुल भिन्न होते हैं. विंध्य पर्वत के नीचे, संपूर्ण दक्षिण भारतीय इलाक़ों में इन्हीं लोगों की प्रधानता है. ये द्रविड़ जाति के लोग हैं. माना जाता है कि इनके पूर्वज आर्यों से भी पहले इस देश में आए थे और उन्होंने पहले पहल भारत में नगर सभ्यता की नींव डाली थी.

तीसरी जाति के लोगों का क़द लंबा, रंग गेहुंआ या गोरा, दाढ़ी व मूंछ घनी, मस्तक लंबा तथा नाक पतली व नुकीली होती है. ये आर्य जाति के लोग हैं. पुराने साहित्यिक ग्रंथों में आरंभिक आर्यों के रहन–सहन, संस्कार और उनके रूप–रंग आदि के बारे में विस्तृत वर्णन पढ़ने को मिलता है. लेकिन, अब बहुत कुछ बदल गया है. कारण शायद यह है कि भारत की जलवायु उष्ण है और कहा जाता है कि उष्णता से रंग काला पड़ जाता है. फिर द्रविड़ों और आदिवासियों के साथ उनका जो वैवाहिक मिश्रण हुआ है, उसके चलते भी आर्यों का पहले का रंग अब फीका पड़ गया है. कुछ विद्वानों के अनुसार, आर्य भारत भूमि पर आने वाली पहली जाति थी, लेकिन यह धारणा विवादों से परे नहीं है. कई मान्यताएं और साक्ष्य इस धारणा की पुष्टि नहीं करते हैं.

एक चौथे प्रकार के लोग बर्मा, असम, भूटान, नेपाल, उत्तर प्रदेश, पंजाब, उत्तरी बंगाल और कश्मीर के उत्तरी किनारों पर बसे हुए हैं. इनका मस्तक चौड़ा, रंग काला व पीला, आकृति चिपटी, नाक चौड़ी और पसरी हुई होती है. इनके चेहरे पर दाढ़ी–मूंछ भी कम उगती है. ये मंगोल जाति के लोग हैं, जो भारत में तिब्बत व चीन से उस समय आए, जब आर्य यहां पुराने हो चुके थे और जब नीग्रो, ऑस्ट्रिक, द्रविड़ एवं आर्य

जातियों की संस्कृतियों के मेल से भारत में आर्य या हिंदू सभ्यता की नींव भलीभांति डाली जा चुकी थी. (इंडो एशियन कल्चर के अप्रैल 1954 के अंक में प्रकाशित एक निबंध में डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने यह अनुमान लगाया है कि मंगोल जाति के लोग आर्यों के आगमन के पूर्व भारत में बस चुके थे, क्योंकि किरात नाम आर्यों के प्रारंभिक साहित्य में ही मिलने लगता है. बहरहाल, इतिहास की कोई भी मान्यता सर्वमान्य नहीं होती.)

ज़ाहिर है कि प्राचीन काल में आर्य, द्रविड़, आदिवासी और मंगोल इन चार जातियों को लेकर भारतीय आबादी की रचना हुई थी. हम जिन्हें आदिवासी कहते हैं, उनके बीच नीग्रो और ऑस्ट्रिक दोनों जातियों के लोग शामिल हैं. इन जातियों के द्रविड़ों से पूर्व इस देश में आने का अनुमान किया जाता है. नीग्रो और ऑस्ट्रिक जातियों के मिश्रण से बने हुए लोग मुंड या शबर भी कहे जाते हैं. इसी प्रकार मंगोल जाति वालों का भी प्राचीन नाम किरात है.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

व्यवस्था के लिए मीडिया ख़ुद एक मोर्चा

डॉ.कमलकांत बुधकर

कहीं कोई महत्वपूर्ण घटना हो और वहां मीडिया न हो, ऐसा कैसे हो सकता है? यह मीडिया का युग है और मीडिया के बग़ैर कोई दिन कट ही नहीं सकता. दुनिया का सबसे बड़ा धार्मिक मेला यानी महाकुंभ तो मीडिया का प्रिय विषय है. जहां भी और जब भी कुंभ और अर्द्धकुंभ के मेले लगते हैं, मीडिया वहां की जा रही तैयारियों के साथ ही जुड़ जाता है. हरिद्वार में 1 जनवरी से 30 अप्रैल 2010 तक यानी चार महीने उत्तराखंड राज्य के पहले महाकुंभ के आयोजन के महीने होंगे. उस अवधि में तीन प्रमुख शाही स्नान और आठ अन्य तिथि पर्वों के स्नान यानी कुल मिलाकर 11 दिन हरिद्वार के प्रमुख स्नान स्थलों पर लाखों आस्तिक हिंदू कुंभ यात्रियों का जमावड़ा रहेगा. इस तरह चार महीनों में उक्त ग्यारह दिन मीडिया के लिए भी खासे महत्वपूर्ण होंगे.

कोई ज़माना था, जब कुंभ–अर्द्धकुंभों की ओर मीडिया या कहें कि अखबार वालों का ध्यान कम ही जा पाता था. कुंभ की ख़बरों को भी बहुत कम स्थान मिल पाता था. तब सरकारें व्यवस्थाओं पर पैसा भी कम खर्च करती थीं और इन मेलों का शोरशराबा भी अपेक्षाकृत कम ही होता था. होता भी था, तो ऐन शाही स्नानों के दिनों में ही होता था. लेकिन अब परिस्थितियां बदल गई हैं. अब समाज का हर वर्ग, जिनमें विरक्त साधु–संन्यासी भी शामिल हैं, प्रचार चाहता है और समाचारों में बने रहना चाहता है. अखबार एवं टीवी चैनल इन महापर्वों के काफी पहले से इनकी तैयारियों और उनसे जुड़े लोगों को अपनी कलम की नोंक पर रखते हैं. वे महीनों पहले से इन महापर्वों की चर्चा करना शुरू कर देते हैं. प्रचार और समाचार के प्रति यह आकर्षण हरिद्वार में 1986 के महाकुंभ से आया है. उससे पहले के कुंभ–अर्द्धकुंभों की चर्चा तो केवल मेलाधिकारियों की रिपोर्ट्स तक ही सीमित रह जाती थी. 1986 के महाकुंभ में पहली बार व्यवस्था पर सरकार ने भी दस करोड़ रुपये खर्च किए थे. इतनी बड़ी राशि इससे पूर्व कभी खर्च नहीं की गई थी. 1986 का महाकुंभ निर्माण और व्यवस्थाओं की दृष्टि से भी अभूतपूर्व था. तत्कालीन मेलाधिकारी अरुण कुमार मिश्रा और मेला एसएसपी अवध नारायण सिंह ने पिछले कुंभ–अर्द्धकुंभों की व्यवस्थाओं को पीछे छोड़ते हुए पहली बार हरिद्वार में कुंभ के बहाने स्थायी निर्माणों को तरजीह देने की शुरुआत की थी. इसीलिए 1986 का महाकुंभ कई कारणों से ऐतिहासिक हो गया था. लेकिन सुव्यवस्थाओं के साथ–साथ एक बड़ी दुर्घटना के साए ने भी इस कुंभ को ऐतिहासिक बनाया था. उस साल ऐन कुंभ के दिन हरकी पौड़ी के उत्तर में स्थित कांगड़ा घाट को पंत द्वीप से मिलाने वाले पुल को अचानक बंद कर दिया गया. आने वाले यात्रियों का दबाव बढ़ता गया और सुबह के समय करीब 49 स्त्री–पुरुष उस पुल के मुहाने पर कुचल कर मारे गए. स्वतंत्र भारत में महाकुंभ के अवसर पर मची भगदड़ में जनहानि की यह एक बड़ी घटना थी. लेकिन यह पहली नहीं, बल्कि दूसरी घटना थी. इससे पूर्व इलाहाबाद कुंभ में 3 फरवरी 1954 को भगदड़ मचने से करीब 800 लोगों की मौत हो गई थी. 26 अगस्त 2003 को नासिक में भी

फोटो–प्रभात पाण्डेय

भगदड़ के चलते कुचल कर 39 लोगों की मौत हो गई थी. भगदड़ के कारण हर जगह अलग–अलग थे, लेकिन हर जगह जनहानि का कारण भीड़ में कुचला जाना ही था. इलाहाबाद की घटना के बाद तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू की पहल पर अति विशिष्ट व्यक्तियों के कुंभ मेला क्षेत्र में प्रवेश पर रोक का एक नियम हमेशा के लिए ज़रूर बनवा दिया था. 1986 के हरिद्वार महाकुंभ में इस नियम की अवहेलना ही दुर्घटना का एक कारण भी बनी. तब उत्तर प्रदेश, हरियाणा और बिहार के तत्कालीन मुख्यमंत्री वीर बहादुर सिंह, चौधरी भजन लाल एवं जगन्नाथ मिश्रा तीनों ही ऐन कुंभ स्नान के दिन हरिद्वार आ गए थे. इन्हीं लोगों के चलते हरकी पौड़ी आने वाली भीड़ को रोका गया और भगदड़ मच गई.

देश में जिस तरह की मीडिया का विकास हुआ है, उसके अंतर्गत विभिन्न कुंभ नगरों में हुए विकास कार्यों से अधिक मीडिया का ध्यान इन महापर्वों पर साधु–संन्यासियों की नागा जमातों, उनके परस्पर एवं व्यवस्था के साथ होने वाले विवादों, उनके अखाड़ों के शाही जुलूसों–स्नानों पर अधिक रहता है. अगर दुर्भाग्य से कोई दुर्घटना घट जाए तो फिर मीडिया की बन आती है.

जबसे देश में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का विकास हुआ है, तबसे समाचार प्रसारण की जल्दबाजी या कहिए कि पहले मैं की होड़ ने कुंभ जैसे अवसरों को भी अधिकाधिक भुनाना शुरू कर दिया है. विभिन्न मीडिया माध्यमों, चैनलों, अखबारों और उनके प्रतिनिधि पत्रकारों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि ने जहां अपने–अपने श्रोता, दर्शक एवं पाठकों को शीघ्र समाचार देने में महारत हासिल की, वहीं मेला व्यवस्थापकों का सिरदर्द भी कई गुना बढ़ा दिया. मेला व्यवस्थापकों पर मीडिया के दोहरे हमले होते हैं. एक हमला तो सीधे–सीधे व्यवसायिक हित के लिए है. हरेक माध्यम को बिज़नेस चाहिए. सो, हरेक की निगाह मेले के भारी–भरकम बजट पर केंद्रित रहती है. दूसरा हमला दायित्व निभाने के लिए होता है. इसके तहत पत्रकार अविलंब समाचार और प्रचार सामग्री चाहते हैं. इस काम में ही व्यवस्था चरमरा जाती है. हर पत्रकार अपने अखबार और चैनल के लिए एक्सक्लूसिव सामग्री के चक्कर में व्यवस्था पर समय–असमय चाहे–अनचाहे दबाव बनाता रहता है. मेले के अधिकांश कार्य इन दबावों के चलते प्रभावित होते हैं. यह अच्छा असर डालते हैं और बुरा भी. मीडिया की जल्दबाजी जब कामों की जल्दबाजी के रूप में सामने आती है तो निराशा ही हाथ लगती है. कई उच्चाधिकारियों का मानना है कि प्रेस वालों के डर से जल्दबाजी में हुए कामों पर ऋणात्मक असर ही ज्यादा पड़ता है.

इसका एक पक्ष यह भी है कि अपनी तारीफ और तस्वीर छपवाने के लिए अधिकारी मीडिया की लल्लो–चप्पो में ही मशगूल रहते हैं. ठोस काम करने की जगह गणेश परिक्रमा की तर्ज़ पर वे मीडिया की परिक्रमा करके ही कार्य की इतिश्री समझ लेते हैं. इस प्रवृत्ति के चलते मीडिया युग का यह भी एक सच है कि मेले से जुड़े उच्चाधिकारी तीन तरह के कामों में ही सर्वाधिक समय खर्च करते दिखते हैं. पहला अपने उच्चाधिकारियों की बैठकों में जाना, दूसरा अपने मातहतों की बैठकें बुलाना और तीसरा यह कि मीडिया को मैनेज करना. इन तीन कामों में संलिप्त अधिकारी के टेलीफोन अर्दली के पास एक ही रटा हुआ वाक्य होता है, साहब मीटिंग में हैं या फिर साहब इंस्पेक्शन को गए हैं. ऐसे में जनता इंतज़ार के अलावा कर भी क्या सकती है? अधिकांश पत्रकारों की स्थिति भी विकट है. वे बिना मेहनत के सब कुछ पाना चाहते हैं, इसलिए अधिकारियों पर जायज़–नाजायज़ दबाव बनाना उनकी प्रवृत्ति में शामिल हो गया है. एक उच्चाधिकारी ने बताया कि उनके तीन–चार घंटे तो केवल प्रेस को समाचार बताने और पत्रकारों की बात सुनने– सुनाने में ही में निकल जाते हैं. उनका कहना है कि आज के अधिकांश पत्रकार लिखी–लिखाई, पकी–पकाई रिपोर्ट या खबर चाहते हैं. उनका ध्यान खबर की तरफ कम, विज्ञापन की ओर ज़्यादा रहता है.

महाकुंभ में मीडिया केंद्र को अधिकाधिक सशक्त बनाने की ज़रूरत है. मीडिया केंद्र को इस बार भी आधुनिक जनसंचार सुविधाओं से युक्त बनाने के प्रयास किए जा रहे हैं, लेकिन पत्रकारों की भीड़ को देखते हुए मुख्य स्नान स्थल हरकी पौड़ी पर हरिद्वार के सवा सौ और देश–दुनिया से आने वाले हज़ारों पत्रकारों, उनके भारी–भरकम संचार साधनों एवं वाहनों को ऐन हरकी पौड़ी तक पहुंचाना प्रशासन व पुलिस के लिए सुरक्षा की दृष्टि से कठिन ही नहीं, असंभव होगा. ऐसे में कुंभ मेला प्रशासन को ऐसी कोई व्यवस्था करनी चाहिए, जो यातायात प्रबंधन में मददगार हो, जिससे मीडिया कैंप में बैठकर ही संपूर्ण स्नान और मुख्य मेला क्षेत्र की गतिविधियों की जीवंत फिल्म चैनलों को उपलब्ध हो जाए. स्टिल और वीडियो दोनों तरह की उच्च कोटि की चित्र सामग्री के लिए संपूर्ण मेले को उच्च तकनीक वाला बनाया जाए. व्यवस्थापक अगर मीडिया को भी एक मोर्चा समझ कर चलेंगे तो ही सफल हो पाएंगे.

kk@budhkar.in

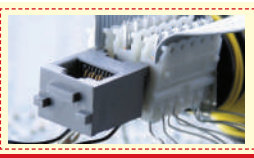

वायरस को डिटेक्ट करने वाली मशीन आने वाली फ़ाइलों के हेडर एरिया में कोड डाल देती है, जिसे माइक्रोप्रोसेसर चिप्स भी समझ लेती है.

अब वायरस की ख़ैर नहीं

इंटरनेट की दुनिया में अक्सर वायरस का हमला होता रहता है. जब भी किसी नए वायरस का हमला होता है, एंटी सॉफ्टवेयर उसे रोकने में असफल रहता है. इसका ख़ामियाज़ा कंप्यूटर के साथ-साथ ऑपरेटर को भी भुगतना पड़ता है, मगर अब ब्रिटिश इंजीनियरों ने इसका भी समाधान निकाल लिया है. उन्होंने वायरस से लड़ने का एक नया तरीक़ा ईज़ाद किया है, जो शुरू में ही वायरस हमले को बेअसर कर देगा. चाहे वह पुराना वायरस हो या नया. इससे आपका कंप्यूटर सुरक्षित रहेगा.

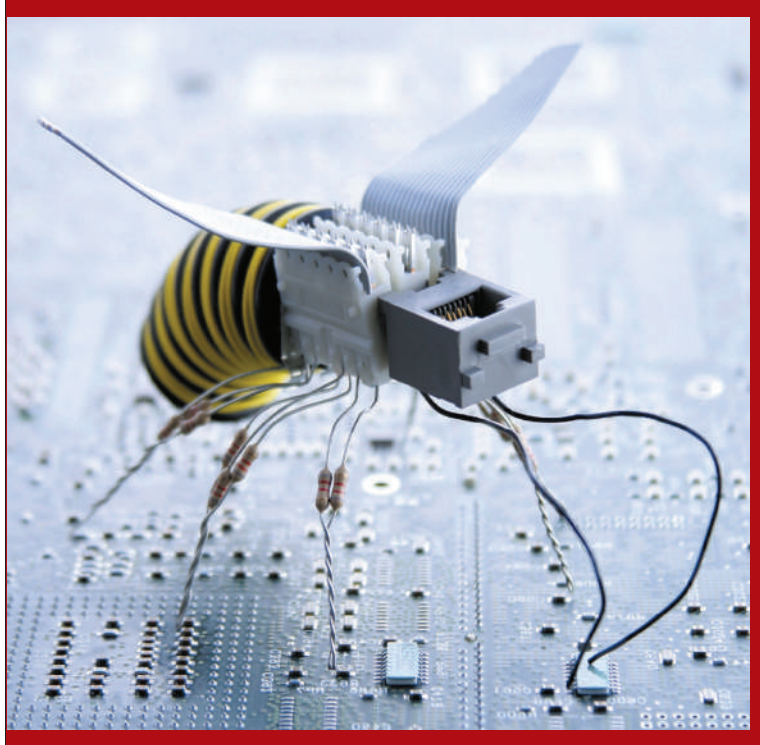

वोरसेस्टशायर की डिफेंस टेक्नोलॉजी कंपनी किनेटिक के इंजीनियर सिमोन वाइसमैन एवं रिचर्ड ओक ने ट्रैक में ही वायरस को पकड़ने का रास्ता निकाला है. इसमें हर उस फाइल को इंटरसेप्ट किया जाता है, जिसमें वायरस के छिपने की आशंका हो सकती है. साथ ही उसमें कंप्यूटर कोड की स्ट्रिंग जोड़ देने से फाइल में छिपे किसी भी वायरस को नाकाम किया जा सकता है. उन्होंने कहा कि यह तरीक़ा आसान नहीं है, लेकिन मुश्किल भी नहीं है. इसकी सहायता से लोग निश्चित रूप से राहत की सांस लेंगे. यह तकनीक ख़ास तौर पर ई-मेल के साथ आने वाले अटैचमेंट को ध्यान में रखकर बनाई गई है. किसी भी मेल सर्वर से गुज़रने के दरम्यान इसमें अटैचमेंट के साथ एक्स्ट्रा कोड जोड़ दिया जाता है. न्यू साइंटिस्ट जर्नल के अनुसार, इसका सबसे बेस्ट फ़ीचर यह है कि इसमें वायरस की किसी जानकारी की ज़रूरत नहीं होती. यह तकनीक पुराने वायरस के अलावा किसी भी नए और अपरिचित वायरस का भी मुक़ाबला कर सकती है.

इस समय कई मेल सर्वर एन्जीक्यूट होने वाली फाइलों को ख़ुद ब्लॉक कर लेते हैं, क्योंकि उनसे पीसी में वायरस फैलने का डर रहता है, लेकिन वायरस बनाने वाले इससे बचने के लिए वायरस को माइक्रोसॉफ्ट वर्ड या एडोब अक्रोबैट के तौर पर दिखाते हैं. बाद में यही फाइलें बनकर कंप्यूटर में एन्जेक्यूटर होकर वायरस अटैक कर देते हैं. किनेटिक का मक़सद ऐसे वायरस को रोकना है. इसके लिए मशीन आने वाली फाइलों के हेडर एरिया में कोड डाल देती है, जिसे माइक्रो प्रोसेसर चिप्स भी समझ लेती है. इस नए तरीके से वायरस का पता चलेगा, साथ ही आप निश्चिंत भी हो जाएंगे.

निकॉन का नया कैमरा कूलपिक्स एस-230

अगर फोटो क्लिक करना आपकी आदतों में शुमार है तो आपके लिए एक अच्छी ख़बर है. वह यह कि निकॉन ने बाज़ार में अपना नया कैमरा कूल पिक्स एस-230 लांच किया है, जिसका लुक काफ़ी आकर्षक है. इसका वजन इतना कम है कि आपको महसूस ही नहीं होगा कि आपके साथ एक कैमरा भी है.

निकॉन के इस नए कैमरे में तीन इंच का टच स्क्रीन है, जो इसे अन्य कैमरों से बिल्कुल अलग करता है, क्योंकि बाज़ार में बहुत सारे कैमरे मौजूद हैं, लेकिन सबमें टच स्क्रीन इंटरफेस नहीं है. इस नए कैमरे की लंबाई, चौड़ाई और ऊं चाई 91-57-20 एम एम है. इसका भार महज़115 ग्राम है. एस-230 छोटा और काफ़ी हल्का है. हालांकि आगे से देखने में यह बिल्कुल एस-570 की तरह दिखता है, लेकिन वास्तविकता यह है कि एस-230 उससे कहीं ज़्यादा अच्छा है, क्योंकि इस पर ब्रश मेटल का फिनिश दिया गया है.

इसका सीसीडी सेंसर दस मेगापिक्सल तक पिक्चर लेने में सक्षम है. इसका अपेचर रेंज एफ-3.1 से एफ-5.9 और ऑप्टिकल जूम 3 एक्स है. कुल मिलाकर यह कैमरा फोटोग्राफी के लिए अच्छा कहा जा सकता है, क्योंकि इसके कुछ फंक्शन इसे दूसरे कैमरों से बेहतर साबित करते हैं. इसकी क़ीमत भी काफ़ी कम है.

इंटरनेट पर रेडियो और टीवी का मज़ा लीजिए

यूं तो इंटरनेट पर मनोरंजन के कई साधन हैं. गाना सुनना हो या फिर फ़िल्म देखना, सभी कुछ इंटरनेट पर मौजूद है, लेकिन अगर आप इंटरनेट पर रेडियो और वेब टीवी के शौक़ीन हैं तो आई रेडियो पॉप आपके लिए बेहतरीन विकल्प है. यह आपको देता है हॉटेस्ट इंटरनेट रेडियो और टी वी कंटेंट, जिनकी मदद से आप एक साथ लगभग 20,000 से भी ज़्यादा रेडियो स्टेशन ट्यून कर सकते हैं. इतना ही नहीं, इसमें विश्व भर के यूजर्स के लिए 5,000 वेब टीवी स्टेशन भी हैं, जिनमें 200 से ज़्यादा देशों की लगभग 59 भाषाओं में 17 कैटेगरी के कार्यक्रम देखे जा सकते हैं. बस माउस के एक क्लिक के ज़रिए आप कुछ भी ट्यून कर सकते हैं. इसका लुक भी आपके दिल को भाएगा, जो कनाडा के एक प्रसिद्ध डिजाइनर द्वारा तैयार किया गया है. सबसे बड़ी ख़ासियत है इसका ऑटोमेटिक ट्यूनर. यह ऑन साइट ही नए कार्यक्रमों और रेडियो स्टेशनों को अपडेट करता रहता है. यह आपकी हार्ड ड्राइव में म्यूजिक को डब्ल्यूएमए फॉर्मेट और वीडियो को डब्ल्यूएमई फॉर्मेट में रिकॉर्ड भी करता है. यह यूएसबी ड्राइव की तरह दिखता है और इसका प्रयोग बिल्कुल आसान है. आपको बस इसका डूंगल कनेक्ट करना है और यह ख़ुद सर्चिंग करने लगता है. इसके लिए किसी अन्य सॉफ्टवेयर को इंस्टाल करने की ज़रूरत नहीं है. यह विंडो विस्ता और विंडो एक्सपी दोनों में काम करता है. इसे जल्द ही भारतीय बाज़ार में लांच किया जाएगा. इस स्टाइलिश गैजेट के लिए आपको 3000 रुपये चुकाने होंगे.

अब बैग बनेगा चार्जर

अभी तक आपने उस जैकेट के बारे में सुना था, जो आपके मनपसंद गैजेट को रिचार्ज करने की क्षमता रखती है, लेकिन गर्मियों में आप हमेशा अपने साथ जैकेट तो रख नहीं सकते, कम से कम ऑफिस में तो कतई नहीं. अगर ऐसा हो कि आप अपने बैग में गैजेट को रखें और चलते-चलते वह चार्ज भी हो जाए तो कैसा रहेगा! आप सोच रहे होंगे कि यह मजाक है. जी नहीं, ऐसा वाक़ई हो सकता है. आस्ट्रेलियन कंपनी आर एंड डी ने एक ऐसा कैरी बैग तैयार किया है, जो इस काम को अंजाम देगा. इसका नाम है सनी बैग. इसमें ली-आयन की रिचार्जेबल बैटरी के साथ तीन वाट का सोलर पैनल लगा हुआ है, जिसकी मदद से आपके गैजेट की बैटरी रिचार्ज होगी. यह एक लैपटॉप कैरी बैग है. इसका वजन 1.4 किलोग्राम है, जबकि इसका साइज 43.32.8 सेंटीमीटर है. सनी बैग की मदद से आप आईपॉड, मोबाइल्स, आईफोन डिवाइस, लैपटॉप और कोई भी गैजेट जो यूएसबी के साथ कनेक्ट हो जाए, रिचार्ज कर सकते हैं. इसका एक बिजनेस प्रो-वर्जन भी है, जिसमें आप 15.4 साइज की स्क्रीन का लैपटाप कैरी कर सकते हैं. इस बैग को बनाने वाले स्टीफन पोनसोल्ड के मुताबिक़, इस बैग पर हम अभी और काम कर रहे हैं और भविष्य में इसके कई और वर्जन लांच किए जाने की योजना है. यह अभी ब्लैक और ब्राउन कलर्स में उपलब्ध है, लेकिन इसे भारतीय बाज़ार में आने में थोड़ा वक्त लग सकता है. तब तक आप इंटरनेट के ज़रिए आनलाइन शॉपिंग से इसका ऑर्डर दे सकते हैं. तमाम ख़ूबियों को देखते हुए इसकी क़ीमत 249 डॉलर यानी लगभग बारह हज़ार रुपये रखी गई है.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

फोटो–प्रभात पाण्डेय

कंप्यूटर निर्माता कंपनी एसर की विंडोज 7 से लैस एस्पायर 5738 डी सीरीज़ की 3 डी नोटबुक का प्रदर्शन करती मॉडल. हाल ही में बाज़ार में उतारी गई इस नोटबुक की क़ीमत 43,500 रूपए है. यह पेंटियम ड्यूल कोर और कोर टू ड्यूल प्रोसेसर में उपलब्ध है.

विज्ञापन हेतु संपर्क करें : email : advt@chauthiduniya.com

भारतीय टीम में गौतम गंभीर ही ऐसे खिलाड़ी हैं, जो कप्तानी के दायित्वों को संभाल सकते हैं. उम्र और फॉर्म दोनों उनके साथ है और वह विवादों से भी कोसों दूर हैं.

टीम इंडिया के नए कप्तान गौतम गंभीर!

चंदन कुमार

गौतम गंभीर बनेंगे टीम इंडिया के नए कप्तान! धोनी की कुर्सी पर ख़तरा मंडराने लगा है. यह ख़तरा किसी और से नहीं, बल्कि टीम इंडिया के नए भरोसेमंद गौतम गंभीर से है. फ़िलहाल बीसीसीआई के अधिकारियों ने विश्वकप 2011 तक धोनी को ही टीम इंडिया का ज़िम्मा सौंपने का फ़ैसला किया है, लेकिन उसके बाद यह कमान गंभीर के हाथों में आनी तय है.

जब कप्तानी की कुर्सी महेंद्र सिंह धोनी को मिली थी, तब टीम की हालत बेहद दयनीय थी. इसके बावजूद टीम की कमान संभालने वालों की कतार में सिर्फ़ धोनी ही नहीं थे. टीम इंडिया का कप्तान बनने की ख्वाहिश कई खिलाड़ियों के दिलों में हिलोरें मार रही थीं, लेकिन मुंबइया लॉबी ने इन सभी के अरमानों पर पानी फेर दिया. दरअसल, गांगुली के बाद द्रविड़ ही टीम के सीनियर खिलाड़ी थे, इसलिए उन्हें कप्तान बनाया गया. लेकिन इंग्लैंड दौरे पर शृंखला में जीत हासिल करने के बाद भी द्रविड़ ने कप्तानी छोड़ दी. तब बीसीसीआई की मुंबइया लॉबी को लगा कि काफ़ी अरसे से मुंबई का कोई खिलाड़ी टीम इंडिया का कप्तान नहीं बना है और यह उसके लिए सबसे बेहतरीन मौक़ा है. नतीज़तन उसने सचिन तेंदुलकर पर दबाव बनाना शुरू किया, ताकि वह टीम की बागडोर संभाल लें, लेकिन सचिन ने साफ़ मना कर दिया. उस समय सचिन के अलावा कोई भी मुंबइया खिलाड़ी टीम में नहीं था. ज़हीर ख़ान थे भी, लेकिन वह अपनी चोट की वजह से टीम में कम, बाहर अधिक रहते थे. रोहित शर्मा ने अभी-अभी क्रिकेट खेलना शुरू ही किया था और शरद पवार की मुंबइया लॉबी रोहित को कप्तान बनाने का जोख़िम नहीं ले सकती थी, क्योंकि इससे टीम में दरार तो आती ही, साथ ही दुनिया के सबसे शक्तिशाली बोर्ड में भी फूट के आसार बढ़ जाते.

एक बार लगा कि उनकी चाल अब सफल नहीं होने वाली है. इसी बीच सचिन ने शरद पवार को महेंद्र सिंह धोनी का नाम कप्तानी के लिए सुझाया. पवार उस समय बीसीसीआई के अध्यक्ष थे. हालांकि उस वक़्त टीम इंडिया के कई खिलाड़ी कप्तानी की ताज़पोशी को लेकर उत्सुक थे, जिनमें वीरेंद्र सहवाग से लेकर युवराज सिंह तक का नाम उछला था, लेकिन सहवाग उस वक़्त फॉर्म में नहीं थे और युवराज सिंह को उनकी मैदान के बाहर की हरकतों की वजह से टीम इंडिया की कमान नहीं सौंपी गई. सबसे अहम बात यह थी कि सहवाग और युवराज टीम इंडिया की मुंबई लॉबी के समर्थक नहीं थे. इस तरह बीसीसीआई ने एक ऐसे खिलाड़ी को कप्तान चुनना बेहतर समझा, जो मुंबई का न हो, लेकिन उनके हाथों की कठपुतली बना रहे. इस कसौटी पर उस वक़्त महेंद्र सिंह धोनी ही फिट बैठते थे. धोनी न तो मुंबई लॉबी के क़रीब थे और न दिल्ली लॉबी के. बोर्ड ने धोनी को ही कप्तान बनाना बेहतर समझा, ताकि एक छोटे से राज्य झारखंड से आया खिलाड़ी उनके हाथों में खेलता रहे. लेकिन, हुआ ठीक इसके उलट. धोनी ने जीत का सिलसिला शुरू कर पहले ख़ुद को मज़बूत किया. उनकी अगुवाई में टीम इंडिया ने टी-20 का विश्वकप जीता. ऑस्ट्रेलिया को उसी की सरज़मीं पर कॉमनवेल्थ बैंक एक दिवसीय शृंखला में मात दी. इसके बाद धोनी अपनी मर्ज़ी से टीम चलाने लगे. वह हर दौरे पर अपनी पसंद की टीम बनवाने और खिलाड़ियों को शामिल करने के लिए चयनकर्ताओं पर दबाव डालते, जिससे बोर्ड सदस्यों के मंसूबों पर पानी फिरने लगा. धोनी के फ़ैसलों के सामने मुंबइया लॉबी बेबस और लाचार नज़र आने लगी, क्योंकि उस समय धोनी की क़िस्मत उनका साथ दे रही थी.

चयन प्रक्रिया में धोनी के दख़ल देने से बोर्ड नाराज़ है और उन्होंने विकल्प तलाशना शुरू कर दिया है. फ़िलहाल कप्तानी के योग्य जो खिलाड़ी नज़र आ रहा है, वह गंभीर ही है.

जिस मुंबइया लॉबी ने धोनी को कप्तान बनवाया, अब उसकी पकड़ बीसीसीआई पर कमज़ोर पड़ने लगी है. सूत्रों की मानें तो टीम इंडिया की कमान अब भारतीय टीम की नई दीवार कहे जाने वाले गौतम गंभीर के हाथों में आने वाली है. गंभीर के हक़ में कई बातें जा रही हैं. जैसे बीसीसीआई में दिल्ली लॉबी का दबदबा. कई बोर्ड अधिकारी धोनी के रवैये से ख़ुश नहीं हैं. धोनी द्वारा चयन प्रक्रिया में दख़ल देने से भी बोर्ड नाराज़ है. वह अपने दोस्तों को टीम में शामिल करना चाहते हैं. फॉर्म में न होने के बावजूद आर पी सिंह को टीम में शामिल करने की उनकी ज़िद ने चयनकर्ताओं को अचंभित कर दिया.

फ़िलहाल दिल्ली के पांच खिलाड़ी भारतीय टीम का हिस्सा हैं, जो गंभीर के पक्ष में माहौल बनाने की तैयारी में लगे हैं. इनके नाम हैं वीरेंद्र सहवाग, गौतम गंभीर, आशीष नेहरा, ईशांत शर्मा और अमित मिश्रा. उक्त सभी भारतीय टीम की मज़बूत रीढ़ बने हुए हैं. सहवाग को अपनी उम्र का एहसास है, इसलिए उन्हें मालूम है कि लाख अच्छे प्रदर्शन के बावजूद वह कप्तान नहीं बन सकते. सहवाग और धोनी के बीच पिछले दिनों खटपट की ख़बर आई थी और अभी भी इनमें ज़्यादा नहीं पटती है. इसलिए उन्होंने गंभीर को कप्तान बनाने को लेकर दबाव बनाना शुरू कर दिया है. हाल में गंभीर के लिए उनके द्वारा दिया गया बयान इस बात की तस्दीक करता है. सहवाग ने गंभीर को गावस्कर के बाद सबसे बेहतरीन ओपनर बल्लेबाज़ बताया. गंभीर न सिर्फ़ एक दिवसीय, बल्कि टेस्ट मैचों में भी पारी की शुरुआत करते हैं. उनका प्रदर्शन भी स्थाई रहा है. वहीं धोनी की अगुवाई में टीम जीत तो रही है, लेकिन धोनी का ख़ुद का प्रदर्शन औसत से कम रहा है. शुरू में धोनी सफलता की बुलंदियां छू रहे थे. अब उनकी सफलता के किले में सेंध लगने लगी है.

सबसे पहले धोनी की अगुवाई में टीम इंडिया टी-20 के दूसरे विश्वकप में उसी तरह बाहर हुई, जैसे द्रविड़ की अगुवाई में 2007 के विश्वकप के पहले दौर में ही बाहर हो गई थी. उसके बाद हाल में जिस तरह भारत ऑस्ट्रेलिया से हारा, उसके लिए भी कई खिलाड़ी और बोर्ड अधिकारी धोनी को ही ज़िम्मेदार ठहरा रहे हैं. टीम के अधिकांश खिलाड़ी गंभीर के पक्ष में और धोनी के ख़िलाफ़ नज़र आते हैं. सूत्रों की मानें तो यदि 2011 के विश्वकप में धोनी की टीम असफल रहती है तो उनका कप्तानी के पद से जाना तय है. कोशिश तो यह भी चल रही है कि विश्वकप से पहले ही गंभीर को टीम की कमान सौंप दी जाए. सहवाग द्वारा दिल्ली डेयरडेविल्स की कप्तानी गंभीर को सौंपना और टीम इंडिया की उप कप्तानी से इस्तीफ़ा देना इसी कवायद की एक कड़ी है.

chandan@chauthiduniya.com

फोटो- *प्रभात पाण्डेय*

spice

www.spice-mobile.com

अब सब खल्लास!

मल्टी-सिम M-4580 की आकर्षक कीमत और भरपूर खूबियाँ करे सबको खल्लास।

M-4580

किलर खूबी: बड़ी बैट्री

- 25 दिनों का स्टैंड-बाइ टाइम और 10 घंटों का टॉकटाइम
- मल्टी-सिम (GSM/GSM)
- MP3 प्लेयर और FM रिकार्ड
- वन-टच टॉर्च और करैन्सी चैकर
- 4 GB तक एक्सपैन्डेबल मैमोरी

BEST BUY PRICE: Rs. 2149

M-5252

- 10 दिनों का स्टैंड-बाइ टाइम और 4 घंटों का टॉकटाइम
- मल्टी-सिम (GSM/GSM)
- डिजिटल कैमेरा
- बिल्ट-इन FM एंटेना
- ड्यूअल LED टॉर्च
- 8 GB तक एक्सपैन्डेबल मैमोरी

BEST BUY PRICE: Rs. 3049

C-5300

- सभी CDMA कनेक्शन के साथ चले
- बड़ी स्क्रीन
- डिजिटल कैमेरा
- MP3 प्लेयर और FM रिकार्ड
- एक्सपैन्डेबल मैमोरी
- वन-टच टॉर्च

BEST BUY PRICE: Rs. 2999

बड़ी स्क्रीन | बड़ी मैमोरी | बड़ा साउण्ड | बड़ी बैट्री

big series

Spice Mobiles come loaded with:

emergic email2sms Mail on Mobile | Shuffle Ring tone | mGurujee | ibibo i build · i bond | REUTERS | Mobile Tracker

Registered Office: Spice Mobiles Ltd., D-1, Sector-3, Noida 201301, Uttar Pradesh, India. **Fax:** +91-120-4363845. **E-mail:** contactus@spicemobile.in. Spice Mobile Phones are available at all leading telecom outlets. ***Conditions apply.** Price features and specifications are subject to change without prior notice. Some of the listed capacity is used for phone functions and thus available capacity could be less than the quoted figure. Battery operation time may vary depending on network usage, environment, music and video formats.

www.itsaugust.com

Postal Regn. No. DL/ND-11/6139/2009-11, RNI No. 45843/86

नेहा के मुताबिक़ उन्हें जो भी रोल्स ऑफर होते हैं उनमें वें रोल की लंबाई नहीं बल्कि कहानी में अपनी भूमिका का महत्व देखती हैं.

आइटम नंबर का सहारा

बॉलीवुड में अभिनेत्री बनने की चाहत लेकर आने वाली ख़ूबसूरत बालाओं में से कुछ तो कामयाब हो जाती हैं, लेकिन अधिकतर को साइड रोल से ही संतोष करना पड़ता है. लाइमलाइट में आने के लिए कई अभिनेत्रियां आइटम नंबर का भी सहारा लेती हैं. ऐसी ही अभिनेत्री हैं कश्मीरा शाह. जिन्हें आइटम नंबर की क्वीन भी कहा जाता है. रवि कपूर के निर्देशन में बन रही फ़िल्म *वर्ल्ड कप 2001* में वह एक आइटम सांग में नज़र आएंगी. इससे पहले भी कई फ़िल्मों में उनके आइटम सांग की तारीफ़ हो चुकी है, जिसमें फ़िल्म *मर्डर* का गीत दिल को हज़ार बार टोका काफ़ी चर्चित हुआ था. पिछले कुछ समय से कश्मीरा को एक्टिंग का कीड़ा काट गया था, इसलिए उन्होंने फिर से फ़िल्मों में अभिनय शुरू कर दिया, जिनमें *रेवती, हॉली डे, वेकअप सिड* और *इश्क क़यामत* आदि प्रमुख थीं. रेवती में तो उन्होंने जमकर अंग प्रदर्शन किया. इसके बाद छोटे परदे पर एक रियल्टी शो में भी काफ़ी विवादास्पद हरकतें की लेकिन उनकी कोई तरक़ीब काम नहीं आई. इसके विपरीत उन्हें आइटम सांग के ऑफर भी मिलने बंद हो गए. इसलिए उन्होंने रवि कपूर के ऑफर को इस उम्मीद के साथ स्वीकार कर लिया कि शायद फिर से उनकी क़द्र बढ़ जाए.

बाल बाल बचीं सोनम

अभिनेत्री सोनम कपूर पिछले दिनों आग से बाल बाल बच गईं. हुआ यह कि गोरेगांव के स्टूडियो फ़िल्मिस्तान में अनिल कपूर के होम प्रोडक्शन की फिल्म *आयशा* की शूटिंग चल रही थी. इसमें सोनम और अभय देओल लीड रोल कर रहे हैं. शूटिंग के दौरान अचानक आग लग गई. वहां रिहर्सल कर रही सोनम कपूर आग देखकर घबरा गईं. समय रहते ही आग पर क़ाबू पा लिया गया, लेकिन तब तक काफ़ी नुक़सान हो चुका था. इस वजह से फ़िल्म की शूटिंग दो दिनों के लिए स्थगित कर दी गई. आग की ख़बर से अनिल कपूर भी काफ़ी बेचैन हो गए थे, लेकिन जब उन्हें पता चला कि सोनम सुरक्षित हैं, तब जाकर उन्हें चैन आया. ग़ौरतलब है कि सोनम कपूर ने संजय लीला भंसाली की फ़िल्म *सांवरिया* से अपने करियर की शुरुआत की थी. लेकिन उन्हें अपेक्षित सफलता नहीं मिली. इसीलिए उनके पिता अनिल कपूर ने सोनम का करियर संवारने का ज़िम्मा उठाया है. इसमें वे कितना कामयाब होते हैं, यह तो फ़िल्म की रिलीज के बाद ही तय होगा. अंग्रेज़ी फ़िल्म *एम्मा* से प्रेरित *आयशा* फ़िल्म में दोनों पिता–पुत्री यानी अनिल और सोनम पहली बार साथ दिखाई देंगे.

शहनाज का रेडियो

फ़िल्म *इश्क विश्क* से शाहिद और अमृता राव का सितारा तो चमक गया, लेकिन शहनाज ट्रेजरीवाला को उतना महत्व नहीं मिल सका. जबकि फ़िल्म में वह भी एक अहम किरदार में थीं. ख़ैर अब उनकी वापसी हो रही है फिल्म *रेडियो: लव ऑन एयर* से. इस फ़िल्म पर उनकी सारी उम्मीदें टिकी हुई हैं. उनका कहना है कि इस फ़िल्म के रिस्पांस के बाद ही वह तय करेंगी कि उन्हें आगे फ़िल्मों में काम करना है या नहीं. इस फ़िल्म में उनके अपोजिट हिमेश रेशमिया हैं. हिमेश भी एक अदद हिट फ़िल्म का इंतज़ार कर रहे हैं. हालांकि *रेडियो* से पहले शहनाज़ फ़िल्म *आगे से राइट* में भी आई थीं, लेकिन यह फ़िल्म सिनेमाघरों में कब आई और कब चली गई, किसी को भी याद नहीं है. शहनाज कहती हैं कि *इश्क विश्क* के बाद वह भारत से बाहर चली गई थीं. इसी दौरान उन्होंने एमटीवी और डिस्कवरी के कार्यक्रमों में भी काम किया. इसके अलावा वह फोटोग्राफी और मॉडलिंग का शौक़ पूरा करती रहीं, लेकिन *रेडियो* को लेकर वह काफ़ी गंभीर हैं तथा इसके प्रचार में व्यस्त भी. देखते हैं कि पब्लिक उनके इस रेडियो को कितना ट्यून करती है.

नेहा का नया मंत्र

अजय देवगन के साथ 2003 में फ़िल्म *क़यामत* से फ़िल्मी दुनिया में प्रवेश करने वाली अभिनेत्री नेहा धूपिया मुख्य भूमिकाओं में विश्वास नहीं करतीं. उनके मुताबिक़, अगर आपमें प्रतिभा है तो छोटे से रोल में भी आपको नोटिस किया जाएगा. उनकी पिछली कुछ फ़िल्मों पर नज़र डालें तो लगभग सभी में वह सह–अभिनेत्री की भूमिका में ही दिखाई दीं. इनमें *सिंह इज किंग, दस कहानियां, मिथ्या, चुप चुप के* और हालिया रिलीज *दे दनादन* का नाम लिया जा सकता है. इस बीच उनकी कई फ़िल्में ऐसी भी आई जिनमें वह लीड रोल में थी, लेकिन ज़्यादा सफल नहीं हुई. इस वजह से भी उन्होंने साइड रोल वाली भूमिकाएं स्वीकार करना शुरू कर दीं. हालांकि समीक्षकों ने *दे दनादन* में उनकी संक्षिप्त भूमिका की तारीफ़ की है. इस फ़िल्म में उनके साथ कैटरीना और समीरा भी थीं. नेहा के मुताबिक़, उन्हें जो भी ऑफर मिलते हैं, उनमें वह रोल की लंबाई नहीं, सिर्फ़ कहानी में उसका महत्व देखती हैं. नेहा आगे भी साइड रोल से कोई परहेज नहीं करेंगी. *एक्शन रिप्ले, आई एम 24, रफ्तार 24.7 और रात गई बात गई* आदि वे फिल्में हैं, जिनमें नेहा आने वाले समय में दिखाई देंगी.

बिग पा का कमेंट

बॉलीवुड की नेचुरल ब्यूटी के नाम से मशहूर ख़ूबसूरत अभिनेत्री विद्या बालन काफ़ी दिनों से लाइम लाइट में नहीं थीं. फ़िल्म *पा* से उनकी शानदार वापसी हो रही है. इस फ़िल्म से उनका बिग बी और जूनियर बी दोनों के साथ काम करने का सपना भी पूरा हो रहा है. ऐसे में उनका ख़ुश होना लाज़िमी है. उनकी ख़ुशी का एक और कारण अमिताभ बच्चन भी हैं. जी हां, पिछले दिनों बिग बी ने अपने साक्षात्कार में विद्या की तुलना पुराने ज़माने की अदाकारा वहीदा रहमान से कर दी. उन्होंने कहा कि विद्या वहीदा की तरह ही ख़ूबसूरत हैं और उनके साथ काम करके उन्हें अपना पिछला ज़माना याद आता है. ग़ौरतलब है कि वहीदा हमेशा अमिताभ की पसंदीदा अदाकारा रहीं हैं. उन्होंने वहीदा के साथ कई फ़िल्मों में काम भी किया, जिनमें *त्रिशूल, अदालत, कभी-कभी* और *सौदागर* आदि फिल्में उल्लेखनीय हैं. अमिताभ के कमेंट से विद्या बहुत उत्साहित हैं. वह कहती हैं कि यह उनके लिए गर्व की बात है कि बिग बी जैसा सितारा ऐसी बात कहे. वाक़ई मानना पड़ेगा कि विद्या के अच्छे दिन चल रहे हैं. एक तरफ़ जहां वह अमिताभ के होम प्रोडक्शन की फ़िल्म *पा* में काम कर रही हैं, वहीं दूसरी ओर अनुराग कश्यप की फ़िल्म *इश्किया* में भी केंद्रीय भूमिका निभा रही हैं. इस फ़िल्म में उनके कई हॉट सीन देखने को मिलेंगे. *पा* में अमिताभ की मां की भूमिका और *इश्किया* में सेक्सी गर्ल. आने वाले समय में विद्या ऐसे कई अलग-अलग किरदारों में दिखेंगी.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

आने वाली फ़िल्म

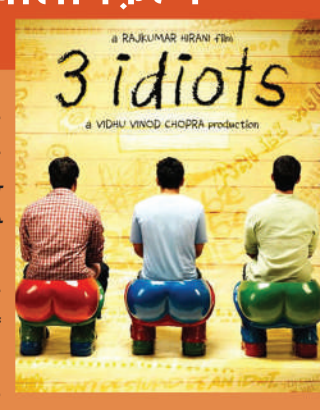

विधु विनोद चोपड़ा और राजकुमार हिरानी *मुन्ना भाई चले अमेरिका* पर काम कर रहे थे, तभी उन्हें आमिर ख़ान से मन मुताबिक़ तारीख़ें मिल गईं और शुरू हो गई *थ्री इडियट.* साल में एक फ़िल्म करने वाले आमिर की हर फ़िल्म कोई न कोई कीर्तिमान रचती है. पिछले साल 25 दिसंबर को क्रिसमस के मौक़े पर उनकी फ़िल्म *तारे ज़मीं पर* रिलीज हुई थी और इस बार *थ्री इडियट.* चेतन भगत के उपन्यास *फाइव प्वाइंट समवन* पर आधारित

इस फ़िल्म में आमिर के अलावा करीना कपूर, माधवन, शरमन जोशी और बोमन ईरानी भी नज़र आएंगे. कहानी के केंद्र में तीन दोस्त हैं, जो आईआईएम में दाख़िला लेते हैं. इन्हीं तीनों के इर्द-गिर्द कहानी में कॉमेडी की चाशनी परोसी गई है. फ़िल्म में जावेद जाफ़री भी नज़र आएंगे. संगीत शांतनु मोइत्रा का है, जबकि गीत लिखे हैं स्वानंद किरकिरे ने.